

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_176508

UNIVERSAL
LIBRARY

वर्ण-व्यवस्था

लेखक

मोहनदास करमचन्द गांधी



नवजीवन प्रकाशन मन्दिर
अहमदाबाद

OUP—552—7-7-66—10,000

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. **H301.446**

Accession No.

H 44

G19V

Author **मान्धी, M. K.**

Title **वर्णव्यवस्था अर्थात् सामान्य
-चर्चा - 19**

This book should be returned on or before the date
last marked below.

वर्ण-व्यवस्था

लेखक

मोहनदास करमचंद गांधी

अनुवादक

रामनारायण चौधरी

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः
गीता :



नवजीवन प्रकाशन मन्दिर
अहमदाबाद

मुद्रक और प्रकाशक
जीवणजी डाह्याभाभी देसाभी
नवजीवन मुद्रणालय, कालुपुर, अहमदाबाद

पहला संस्करण, प्रति ३,०००

डेढ़ रुपया

अगस्त, १९४८

प्रकाशकका निवेदन

हिन्दुस्तानी बालबेवाले पाठकोंकी कभी दिनोंसे यह लगातार माँग हो रही है कि हम गांधी साहित्यका प्रकाशन हिन्दुस्तानीमें करें। उनकी अिस स्वाभाविक माँगको पूरी करनेके लिये हमने अेक निश्चित योजना बनायी है। अुसीके फलस्वरूप हम यह पहली पुस्तक पाठकोंकी सेवामें रख रहे हैं।

१७-८-१४८

विषय—सूची

प्रकाशकका निवेदन	३
मेरे लेख पढ़नेकी कुजी	५
टिप्पणी कि० मशहूवाला	९
प्रस्तावना	१३

पहला हिस्सा : वर्ण और उसके धर्म

१. वर्ण-व्यवस्था	३
२. वर्णसंकर या वर्णाश्रम ?	७
३. वर्णानर्णकी सङ्गन	११
४. मेरा वर्णाश्रम-धर्म	१५
५. ऊँचे और नीचे	१७
६. वर्णाश्रम-धर्म	१९
७. ' ब्राह्मण और अब्राह्मण '	३२
८. वर्णाश्रम	३७
९. वर्ण और कौम	४४
१०. वर्ण-धर्म	४८
११. आज तो अेक ही वर्ण है	५३
१२. वर्ण-व्यवस्थाका रहस्य	५४
१३. पाँच सवाल	५६
१४. विरोधाभास	५९
१५. आयन्दा वर्णधर्म	६१
१६. सत्त्वा ब्राह्मणपन	६४
१७. ब्राह्मण क्या करे ?	६८
१८. क्षत्रियका धर्म	७२
१९. वैपारीका फर्ज	७५
२०. शूद्रोंका हक्क	७७
२१. हज्जाम या ' वालंद ' ?	७९
२२. निजी मेहनत	८१

२३. भिखारी साधु	८४
२४. 'साधुओं' की तकलीफ	८६
२५. दीक्षा कौन ले ?	८७

दूसरा हिस्सा : जाति और कुरीतियाँ

१. जाति 'बंधन'	९१
२. धर्मके नामपर लूट	९२
३. ये बाड़े तोड़ो	९३
४. सत्याग्रह और जाति सुधार	९९
५. बहिष्कारका हथियार	१०४
६. जाति बाहर	१०५
७. बहिष्कार हो तो ?	१०८
८. खुदको ही करना पड़ेगा	१०९
९. विद्यार्थियोंका सुन्दर सत्याग्रह	११०
१०. मरनेके बादका भोजन	११३
११. पहले गर्भ वगैराके भोज	११५
१२. कर्ज करके भोज	११६
१३. जाति भोज	११७
१४. मौसर या कारज	११८
१५. रोना पीटना	११९
१६. रोटी-बेटी	११९
१७. राष्ट्रीय छात्रालयोंमें पंक्तिमेद	१२०
१८. नयी विधियाँ	१२३
१९. धर्मके नाम पर अधर्म	१२७
२०. तपका उत्सव	१२८
२१. स्मशानका सुधार	१३०
२२. महामारी और मौतगाड़ी	१३१
पूर्ति	१३३

परिशिष्ट

१. हिन्दू-समाजकी प्रतिज्ञा	१४०
२. आश्रमका रहन सहन	१४०

मेरे लेख पढ़नेकी कुंजी

यह पुस्तक फिरसे पढ़नेकी मेरे पास फुरसत नहीं । फिरसे पढ़नेकी अच्छा भी मैं नहीं रखता । मेरे पास दूसरा बहुत काम है ।

मेरा खयाल यह है कि अिन्सात रोज आगे बढ़ता है या पीछे जाता है, कभी अेक जगह नहीं रहता । सारी दुनिया गतिमान या चलनेवाली है । अिसमें कोअी अपवाद नहीं है । कोअी चीज अिस नियमसे परे नहीं है । अिसलिअे अगर मैं यह दावा करूँ कि मैं जैसा कल था, वैसा ही आज हूँ या अैसा ही रहूँगा, तो वह दावा झूठा है । मुझे अैसा मोह भी नहीं रखना चाहिये ।

यह सती है कि मेरे लेख या वचन अैसे होने चाहिये, जिनसे किसीको गलत खयाल न हो । मैं अैसा न लिखूँ, जिसके दो या ज्यादा मानी हो सकें । यानी मेरा लिखना, बोलना, और अमल सत्य और अहिंसाको नजरमें रखकर ही हो । मे कह सकता हूँ कि जबसे मैंने अपनी माँमे दादा किया, तभीमे मैं अैसा करता आया हूँ । सब पूछा जाय तो जबसे मैं समझने लगा, तभीसे मैं सत्यका पुजारी रहा हूँ ।

लेकिन अिसके ये मानी नहीं हैं कि सत्य और अहिंसाको मैंने पूरी तरह देख लिया है, या आज भी देखता हूँ । मैं यह मानता हूँ कि मुझे सत्य और अहिंसा राज ज्यादा ज्यादा साफ तौरपर दिखाअी दे रहे हैं । अिसलिअे वर्णाश्रमको जैसा मैं आज देखता हूँ, वैसा ही मैंने अुसे हमेशा देखा है, यह नहीं कहा जा सकता । मैंने अैसा कहा है कि वर्ण और आश्रम हिन्दू* धर्मकी देन है । आज भी मैं अिस कहनेपर कायम हूँ ।

* हिन्दू नाम दूतर्गोका दिया हुआ है । जो धर्म हिन्दूधर्मके नामसे पहचाना जाता है, अुसका नाम मानवधर्म है; यानी मनुअय मात्रका धर्म । अिस धर्मकी हमेशा खोज होती है । वह अनन्त है । वह वेदमें या मनुस्मृतिमें नहीं है । वह तो मानवके हृदयमें है । और जैसे जैसे मानव संस्कारी बनता जाता है, वैसे वैसे अुसके हृदयमें वह धर्म जागता है ।

मेरी मान्यता या अकीदेके न तो वर्ण रहे और न आश्रम । ये दोनों होने चाहियें धर्म । ऐसा कह सकत हैं कि अिनमें आश्रम तो गायब ही हो गया है । वर्ण सिर्फ अहंकार या शहरकी शकलमें देखनेमें आता है । ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य हानेका दावा ही अहंकार है । जहाँ धर्म हो, वहाँ अहंकारका क्या काम ? शूद्रकी तो गिनती ही कहाँ है ! शूद्र यानी नीच ! और अतिशूद्र या अछूत यानी नीचसे भी नीच । अिमे धर्म नहीं, अधर्म कहना चाहिये ।

गीताके चार वर्ण आज कहाँ हैं ? वर्णगे जाति अलग चीज़ है । जातियाँ बेशुमार हैं । में नहीं जानता कि जातियोंके लिये गीतामें या दूसरी किताबोंमें कोसी आधार है । गीतामें चार वर्ण बताये हैं और वे गुण और कर्मके आधार पर । चार तो उदाहरणके तौरपर हैं । असलिये चारसे ज्यादा भी कह सकत हैं और कम भी । आज तो अंक ही वर्ण है और वह शूद्रका कहिये या अनिशूद्रका — हरिजनका — अछूतका । असमें मुझे कोसी शक नहीं कि यह बात सही है । यह बात सब हिन्दुओंको समझा सकूँ, तो हिन्दू जातिमें हानेवाले सब झगड़े मिट जायँ । हिन्दू, मुसलमान वगैरहके कौमी झगड़े भी मिट जायँ और हिन्दुस्तानकी जनता दुनियामें बहुत बड़ा दर्जा पा जाय । जिस तरह अँचनीचपन मानना धर्म नहीं, अधर्म है, उसी तरह रंग द्वेष या काले गोरेका भेदभाव भी पाप है । अँचनीचपन या रंग द्वेष किसी शास्त्र या मज़हबी किताबमें देखनेमें आये तो वह शास्त्र नहीं । मनुष्यको यह निश्चय करके ही शास्त्रको छूना चाहिये कि शास्त्र धर्मके खिलाफ़ कोसी बात कह ही नहीं सकता ।

जातपाँतके भेदने अितनी जड़ जमा ली है कि उसके छीटे मुसलमान, अीसाअी वगैरह सभी धर्मोंको लगे हैं । अितना तो सही है कि सभी धर्मोंमें थोड़ी बहुत बाड़ा बन्दी रही है । असपरसे में अस फैसलेपर पहुँचा हूँ कि हर अिन्सानमें यह दोष मौजूद है । शूद्र धर्मसे ही यह दोष धुल सकता है । अैसे बाड़े और अँचनीचपन मैंने तो किसी धर्म पुस्तकमें नहीं देखे । धर्मके लिहाजसे हर अिन्सान बराबर है, — ज्यादा पढ़ा हुआ, ज्यादा बुद्धिवाला या ज्यादा धनवान

आदमी अन्नपद, मूर्ख या गरीबसे ऊँचा नहीं । अगर वह संस्कारी यानी धर्मसे शुद्ध हो चुका है, तो अपनी पढ़ाई, अपनी अकल और अपनी दौलतसे अपने बेपढ़े, अज्ञानी और गरीब भाई बहनोंकी सेवा करेगा, और खुदने जो कुछ पाया है, उसे अपने भाई बहनोंको यानी दुनियाभरको देनेकी कोशिश करेगा । अगर धर्मकी यह हालत है, तो इस अधर्मकी हालतमें खासकर और अपने दिलसे अतिशुद्ध यानी नीचीसे नीची जातिका बननेमें धर्म है । अपने पासकी संपत्तिका वह मालिक नहीं, बल्कि रक्षक है । उसे वह दुनियाके लिये अस्तेमाल करेगा । अपने काममें अतना ही लेगा, जितना उसकी मेहनतके तौरपर उसके हिस्सेमें आयेगा । ऐसा हो तो न कोई गरीब रहे, न अमीर । ऐसी व्यवस्था या निजाममें अपने आप सब धर्म बराबर समझे जायँगे । यानी धर्मके, जातपाँतके और अमीर गरीबके भेद और झगड़े मिट जायँगे ।

यहाँ यह विचार करना भी वाजिब है । परतंत्र जातिका अंक सबसे ऊँचा धर्म यह है कि मौक़ा मिलते ही पहले उसे अपनी गुलामीकी बेड़ियाँ तोड़ डालनी चाहियें । जा परतंत्र हैं, वे जबरदस्ती बनाये गये अछूत हैं । फिर भले ही उन्हें पदवियाँ दी हों, न्यायाधीश या जज बनाया हो या चपरासी बनाया हो, या वे राजा हों या रंक । जितनी ज्यादा अुपाधियाँ, अतनी ही गुलाम राज्यमें ज्यादा गुलाम । इस तरह आज़ादीको धर्मके साथ जोड़ने और धर्मको सर्वव्यापी शकल देनेसे पिछले पैरेमें बतायी हुअी हालत अपने आप पैदा होनी चाहिये ।

यह सुन्दर हालत आज आये या कल, इसके झगड़ेमें जा खुद धर्म पालना चाहते हैं, वे नहीं पढ़ेंगे । और अगर बहुत लोग इस धर्मको पालें, तो सिर्फ परतंत्रता ही नहीं मिटे, बल्कि आज़ादीमें भी अन्धाधुन्धी न रहे । यह सपनेका स्वराज है । इसकी मुझे लगन है । इसे हासिल करनेके लिये मैं जीना चाहता हूँ, और मैं ऐसी कोशिश कर रहा हूँ कि इसका अुपाय करनेमें ही मेरी हर साँस निकले ।

पढ़नेवालेको अिन विचारोंके खिलाफ़ इस पुस्तकमें कुछ भी दिखायी दे, तो वह अतना सुधारकर पुस्तक पढ़े ।

मेरी मेहनत बचानेके लिये मेरे विचारोंका जिन्होंने खुलासा किया है और जिसके लिये खूब मेहनत की है, उन्होंने मेरे आजके विचारोंकी टिप्पणी भेजी है । श्री किशोरलालका मकसद यह है कि अगर मैं जिस टिप्पणी पर दस्तखत कर दूँ, तो मेरा समय बच जाय । उसमें फेरबदल करनेकी तो मुझे छूट अपने आप ही थी, मगर उसे पढ़नेसे मैंने देखा कि अपने स्वभावके मुताबिक श्री किशोरलाल पुस्तक पढ़ गये, उसपर उन्होंने विचार कर लिया और मेरे मौजूदा खयालोंके गवाहके तौरपर ओक टिप्पणी तैयार कर दी । हालाँकि मैं उसपर हस्ताक्षर नहीं कर सकता, फिर भी वह जिसके साथ प्रकाशित करना मुनासिब है । उसमें और मेरी कुंजीमें विरोध नहीं । श्री किशोरलालकी टिप्पणी पुस्तकका ध्यानसे पढ़कर लिखी गयी है, इसलिये शायद पढ़नेवालेको वह सहायक हो सके । सत्यकी जय हो !

महाबलेश्वर, ३१-१२-१९५५

मोहनदास करमचंद गांधी

टिप्पणी

ऐसा ठेक सुझाव किया गया है कि गांधीजी अपने लेखोंका संग्रह फिरसे जांचकर अपने आजके विचार ही जाहिर करें और अिस तरह उनका सुधरा हुआ संस्करण ही प्रकाशित किया जाय । मुझे यह सूचना ठीक नहीं मालूम हुअी । लेकिन अिस टिप्पणीसे शायद मामूली पढ़नेवालेको मदद मिलेगी ।

यह पुस्तक 'वर्ण-व्यवस्था' के बारेमें कोअी पूरा शास्त्र या कानून नहीं । लेकिन पन्चीस सालके दरमियान गांधीजीकी भावनाओं और विचारोंका जिस तरह विकास हुआ है उसका अितिहास है । हालाँकि गांधीजीने अकेले ही ये लेख लिखे हैं, फिर भी बहुत हद तक जैसा उनके विचारोंका विकास हुआ है, वैसा ही हिन्दू समाजके खासे हिस्सेका विकास भी अिन लेखोंसे जाहिर होता है । जिस ढंगसे कोअी बात वे आज पेश करते हैं, उससे ज्यादा नरम ढंगसे पेश करनेपर भी जो नीज वे हिन्दू समाजको आसानीसे न समझा सके थे, वही बात आज वे ज्यादा सरल होनेपर भी समझा सकते हैं । यह बताता है कि अेक पीढ़ीमें हिन्दू समाजके विचारोंमें कितनी क्रांति या अिनकिलाब हुआ है । समाजका अध्ययन करनेवालेके लिये यह साक्षी कायम रहना अच्छा ही है । दूसरे, अब भी आगे चलकर उनके विचारोंमें फर्क न पड़े, अिसका क्या भरोसा ? वे सत्यके शोधक यानी हकके तलाश करनेवाले हैं । अिसलिये जितनी और जैसी सचाअी उनकी समझमें आती जानी है, वैसी ही वे लोगोंके सामने पेश करते जाते हैं और ज्यादा जाननेकी अिच्छा रखते हैं । क्या अिसीलिये समय समयपर सब विषयोंके सब लेखोंको सुधारा जाय ? यह असंभव है ।

बूँकि हर लेखके नीचे तारीख दी हुअी है और उनके आखिरी विचारोंको ही अधिक सच्चा समझनेकी चेतावनी कअी जगह दी हुअी है,

असलिये बुद्धिसे काम लेनेवाले सच्चे शोधकको रास्ता भूलनेका डर नहीं हो सकता । अतना होनेपर भी अगर कोअी आदमी नये विचारको छोड़कर पुराने विरोधी विचारको पकड़े, तो समझना चाहिये कि या तो वह बुरे अिगदेसे अैसा करता है या वह अभी विचारकी अुसी सतहपर है, जहाँ गांधीजी किसी समय थे । अीमानदार शोधक गांधीजीके विचारोंका सार निकाले तो वह दूसरी बात है, जैसा 'गांधी-विचार-दोहन' में मैंने किया है ।

अगर कांअी किसीके लेखोंको लापरवाहीसे पढ़े, अुसमें अिस्तेमाल किये गये शब्दोंको लिखनेवालेके मानीमें नहीं, बल्कि अपने-माने हुअे अर्थमें ही समझा करे और फिर गड़बड़में पड़कर टीका करने बैठे, तो अुसका कोअी अिलाज नहीं । अैसे टीकाकार खुद ही गड़बड़में नहीं पड़ते, बल्कि असली लेखोंको न पढ़नेवाले अपने श्रोताओं और पाठकोंको भी गड़बड़में डालते हैं । अितना कह कर अुनावले पाठकको सावधान करनेकी और यह दिखानेकी गरजसे कि गांधीजीके विचारोंमें धीरे धीरे कैसे फर्क पड़ता गया है, अेक अुदाहरण देता हूँ ।

ब्राह्मण, क्षत्रिय वगैरा वर्णों, मोढ़, लाड वगैरा जातियों और ब्राह्मण अब्राह्मण जैसे फिरकोंकी बुनैयादपर खड़ी हुअी जातियाँ — तीनों अलग अलग चीजें हैं । अिन सबके लिये अंग्रेजी 'कास्ट' शब्द काममें लेनेसे गड़बड़ें पैदा होती हैं । आम तौर पर गांधीजीने तीनोंके भेद अलग अलग लफ्जोंसे दिखाये हैं । किसी जगह अेक ही तरहकी परिभाषा न रखी जा सकी हा या अेकके बजाय दूसरा शब्द अिस्तेमाल हुअा हो, वहाँ बहुत करके प्रसंगसे सफाअी हो जाती है ।

अब, अिन तीनमेंसे मुझे याद नहीं कि गांधीजीने जातियोंका होना अपने जमानेमें जरूरी या अच्छा माना हो । यह तो हो सकता है कि अुनकी बुराअी करनेकी भाषा सख्त होती गअी हो । अेक समय जातियोंको तोड़ना अुन्हें जरूरी मालूम होता था, लेकिन अैसा नहीं लगता था कि तोड़े बिना काम नहीं चलेगा । अब तो अुन्हें अैसा ही लगता है कि जातियोंको तोड़े बिना काम नहीं चल सकता ।

ब्राह्मण-अब्राह्मण जैसे फिरके तो आजकी पेचीदा राजनीतिक हालतसे पैदा हुअे हैं। ये जातिभेदसे निकली हुअी बुराभियाँ हैं और अुससे बेजा फायदा अुझानेके लिअे बनाअी गअी आजकलकी संस्थाअें हैं। जातियोंके मिटनेसे ही ये मिट सकती हैं।

‘वर्ण’ के बारेमें गांधीजीके विचार मौलिक हैं। अिनका जातियोंके साथ कोअी सम्बन्ध नहीं; गोटी-बेटी व्यवहारसे कोअी सरोकार नहीं। ये अुच्चनीचके खयाल या रूपयें पैसेकी कमीबेशीपर नहीं, बल्कि सामाजिक और आर्थिक बराबरीके अुसूलपर और अुस अुसूलपर अमल करनेके आदर्शपर बनाये गये हैं। हो सकता है कि पढ़नेवाला कल्पनाशील न हो, तो अिन विचारोंको आकाशमें अुड़ना ही समझे। आदर्शवादी जनता अुनपर अमल करनेकी कोशिश करेगी। गांधीजीके नमूनेके समाजमें विश्वविद्यालयका विद्वान् प्राफेसर और गाँवका मुंशी, बड़ा सेनापति और छोटा-सा सिपाही, होशियार व्यापारी और अुसका गुमास्ता, मजदूर और भंगी सब अेकसे खानदानी माने जायेंगे और सबकी खानगी माली हालत बराबर होगी। अिससे अिज्जत या आमदनी बढ़ानेके लिअे अेक धंधा छोड़कर दूसरा पेशा करनेका ढालच नहीं रहेगा। कोअी धंधा करनेकी लियाकत विरासतमें चली आती हो या शिक्षा और आसपासके वातावरणसे मिली हो, सौमें नब्बसे ज्यादा बच्चोंकी लियाकत तो बापदादेका पेशा करनेकी ही होना संभव है। वह पेशा करनेसे आमदनी या अिज्जत कम न हो, तो वे फजूल ही दूसरा धंधा ढूँढना न चाहेंगे। जिस तरह आज योग्यता हो या न हो तो भी सैकड़ों विद्यार्थी युनिवर्सिटीकी डिग्रियोंके पीछे पड़ते हैं, वैसे वे बेकार काशिश न करेंगे। गाँवोंके तेज बुद्धिवाले जवान गाँवोंका खाली करते नहीं देखे जायेंगे। हो सकता है कि अिके दुके बच्चोंका अुद्भाव दूसरी तरफ हो। यह भी मुमकिन है कि बदलती हुअी जरूरतोंके मुताबिक अलग धंधोंके लिअे कितने ही लोगोंको प्रेरणा की जाय। गांधीजीकी कल्पनामें अिसकी मनाही नहीं है। न अुसमें आगे बढ़नेके बजाय अेक जगह बैठे रहनेकी ही गुंजायश है। जो आज ब्राह्मण माने जाते हैं, मगर ब्राह्मणका धंधा नहीं करते या जो ब्राह्मण तो माने नहीं जाते, मगर धंधा ब्राह्मणका ही करते हैं और अुसके आदर्शके माफिक अमल करते हैं,

अुन लोगोँको किस नामसे पहचाना जाय, अिस बारेमें अेक समय गांधीजीने अपने विचार जाहिर जरूर किये हैं । लेकिन यह कहा जा सकता है कि अब अुन्हें अिस बातमें कोअी दिलचस्पी नहीं रही कि किसे क्या नाम दिया जाय । तमाम पेशेवालोंके चार ही दर्जे किये जायँ या कम ज्यादा, अिस बारेमें अुन्होंने अपने विचार ' कुंजी 'में बता ही दिये हैं ।

कि० मशरूवाला

प्रस्तावना*

(१)

जातिके बारेमें मैंने क्या कहा है और क्या नहीं कहा, यह हूँदनेके लिअ मेरे दरमे लेखोंकी छानबीन करनेकी निकम्मी सिरपच्चीमें न पड़कर आपने मुझे नीचे लिखे सवाल भेज दिये, सो अच्छा किया :

“ १. जाति व्यवस्था या जातपाँतके बारेमें आपने जो विचार जाहिर किये हैं, उनपर आज भी आप कायम हैं ?

२. क्या आप अब भी मानते हैं कि जाति व्यवस्था समाजकी सबसे बढ़िया व्यवस्था है और दुनियाको अिसे अपनाना चाहिये ?

३. क्या आप अब भी मानते हैं कि आज जो हजारों जातियाँ मौजूद हैं, वे सब मिट जायँगी और एक दूसरेमें मिलकर आखिरमें सिर्फ चार वर्ण ही रह जायँगे । पिछले पच्चीस बरसमें कितनी छोटी जातियाँ गिरीं और बड़ी जातियोंमें मिल गयीं ?

४. अतिहासके जमानेमें जिननी जातियाँ हमारे देखनेमें आती हैं, वे सब जन्मके आधार पर बनी और भुसमेंसे पैदा होनेवाले भेदभावपर खड़ी हुयी थीं । तो फिर जो बराबरी और भाभीनारा आप सिखाने हैं, उसके साथ समाजके ऐसे बदोबस्तका मेल बैठेगा ? आप जोर देते हैं कि भंगियोंको कयामतके दिन तक पीढ़ी दर पीढ़ी झट्ट लगानेका हो काम करना चाहिये, तो आगे चलकर अिनकी जातिका क्या हागा ?

५. श्री संजानाने ‘ गायकी राजनीति ’ के जो दोष निकाले हैं, क्या वे दरअसल सही नहीं हैं ?

६. केन्द्रीय असेम्बलीमें हिन्दू कानूनमें जातपाँत दूर करनेके लिअ जो प्रस्ताव पेश किया गया है, क्या आप भुसे पसंद करेंगे ?

* जातियोंके बंदोबस्तके बारेमें गांधीजीके लेखोंमेंसे कितने ही शुद्धरणके साथ एक भाभीने जो सवाल भेजे थे, उनके जवाबमें गांधीजीने जातियोंके बारेमें अपने विचार फिरसे थोड़ेमें पेश किये हैं । उन सवालोंके जवाब अिस किताबकी भूमिका के तौरपर दिये गये हैं ।

— प्रकाशक

७. श्री संजाणाकी प्रिस रायके बारेमें आपकी क्या राय है कि 'कांग्रेस सनातनी हिन्दू संस्था है और महात्माकी छत्रछायामें जातपाँतवाले सनातनी हिन्दू धर्मकी खैरखाह और उसे फिरसे श्रृंवा अठानेवाली मशीन बनी है ?' अगर श्री संजाणाका यह कहना सच हो तो क्या कांग्रेसके अिस दावेको ठस नहीं पहुँचती कि कांग्रेस खालिन राष्ट्रीय संस्था है और अ्पमें फिरकेन्द्रकी भावना नहीं है ?

८. क्या लोकशाही और लोकशाही संस्थाओंके साथ जाति व्यवस्था मेल खाती है ? ”

अिसपर मेरा जवाब यह है :

यह जाननेके लिये कि मैं आज क्या मानता हूँ, मेरे सारे पिछले लेखोंको देखनेकी जरूरत नहीं, क्योंकि मेरी आजकी मान्यता ही सही है । मैं यह कहना चाहता हूँ कि हिन्दूधर्ममें जाति आज जिस शकलमें मौजूद है, वह अेक अैसी बेहूदा चीज है, जिसका वक्न गुजर गया है । सच्चे धर्मकी बढ़तीमें अिससे रुकावट ही होगी और अगर हिन्दूधर्म और हिन्दुस्तानको जीना है और दिन दिन तरक्की करना है, तो जातपाँत मिटनी ही चाहिये । अैसा करनेका अुपाय यह है कि सब हिन्दुओंको अपना भंगी आप बन जाना चाहिये और पीढ़ी दर पीढ़ीके भंगी कहलानेवालोंको अपना भाअी समझना चाहिये ।

मैंने 'भंगी' अिसलिअे लिखा है कि जीनेकी सबसे नीची सीढ़ी पर वही खड़ा है । अिसमें आपके सब सवालोंका जवाब आ जाता है और अिससे ज्यादा कहनेकी मेरे लिये जरूरत नहीं रहती । यह साफ है कि सवाल पूछनेवालेने मेरे लेखोंको पढ़नेकी तकलीफ नहीं अुठाअी । . . . सभी जानते हैं कि कांग्रेस न शुरूसे सनातनी हिन्दू संस्था थी और न आज ही है । यह अलग अलग विचार रखनेवालोंकी अेक लोकशाही संस्था है और मेरी देखभालके कारण ज्यादा लोकशाही बनती जा रही है ।

अप्रैल, १९४५

मोहनदास करमचंद गांधी

(२)

वर्ण-धर्म पर मैंने आज तक जो कुछ लिखा है, यह छोटीसी किताब उसका एक संप्रदा है । वह कभी महीनों पहले छप चुकी थी, लेकिन प्रस्तावना न हानेसे वैसे ही पड़ी रही । मैंने प्रस्तावना लिख देना मंजूर किया था । पर हरिजन यात्राके कारण आज तक लिख ही न सका । अलग अलग मौकोंपर लिखा हुआ सारा एक बार पढ़नेके बाद प्रस्तावना लिखना चाहता था । यह अच्छा तो आज भी पूरी नहीं कर सकता । शायद इसीमें भला है । मुझे आगे पीछेका सम्बन्ध अटूट रखनेका लालच नहीं । सचासीको नजरके सामने रखकर आज जो कुछ मैं मानता हूँ, वही कह देना ठीक है । प्रकाशक भी यही चाहते हैं । यह देखना पढ़नेवालेका काम है कि आगे पीछेका सम्बन्ध बना रहता है या नहीं । जहाँ उसमें पढ़ने-वालेको मेल बैठता न दीज्ये, वहाँ मेरे मनकी हालत जाननेके लिये उसे पिछले लेखोंको छोड़कर इस प्रस्तावनामें लिखा हुआ सही मानना चाहिये । मैं सब कुछ जाननेका दावा नहीं करता । मेरा दावा सचासी पर डटे रहनेका और जिस वक्त जो सब मालूम हो उसीके मुताबिक जहाँ तक हो सके अमल करनेका है । इससे जान या अनजानमें मुझमें फेर-बदल या तरक्की, जो कुछ कहिये, हो सकती है । जहाँ जानबूझकर तब्दीली सूझती है, वहाँ तो मैं उसे लिख ही देता हूँ । लेकिन बारीक तब्दीलियाँ तो अनजानमें ही हुआ करती हैं । उनकी याददाश्त कहाँसे रखी जाय ? वह चकोर या तेज आँखवाला पाठक ही रख सकता है ।

लोग मामूली व्यवहारमें वर्ण-धर्म समासका अस्तिमाल थोड़ा ही करते हैं । वर्णाश्रम-धर्म समास काममें लानेका रिवाज लोगोंमें ज्यादा है । इस छोटी-सी किताबमें आश्रम यानी उप्रके चार हिस्सोंके बारेमें थोड़ा लिखा है । ज्यादा तो वर्ण यानी समाजके चार हिस्सों पर ही लिखा है । लेकिन यह कहा जा सकता है कि हिन्दू धर्मका सच्चा नाम वर्णाश्रम-धर्म है । हिन्दू नाम परदेशी मुसाफिरीका रखा हुआ जान पड़ता है । और उसका सम्बन्ध भूगोलके साथ है । हमने जो धर्म पाला है, उसे अगर कोसी खास और मतलब भरा नाम दिया जा सकता हो, तो जरूर वह

नाम वर्णाश्रम-धर्म है। यह कहनेसे कि हिन्दुओंका धर्म आर्य धर्म है, धर्मके बारेमें कोअी सूचना नहीं मिलती। इसका मतलब तो अितना ही हुआ कि हिन्दू यानी सिन्धुके पूर्वमें रहनेवाले लोग अपनेको आर्य मानते हैं और दूसरोंको अनार्य; या वेदका धर्म माननेवाले खुदको आर्य और दूसरोंको अनार्य समझते हैं। ऐसे नाममें मुझे तो दोष भी दिखाअी देता है। वर्णाश्रम-धर्मसे धर्मकी विलक्षणता या गैर मामूलीपन जाहिर होता है। यह विचार ठीक हो या न हो, अितना तो सब मानेंगे कि वर्णाश्रमको हिन्दू धर्ममें बड़ी जगह दी गअी है। स्मृतियोंके जमानेकी अेक भी धर्म पुस्तक ऐसी नहीं देखनेमें आती, जिसमें वर्णाश्रम धर्मको बहुत बड़ा स्थान न दिया गया हो। वर्णाश्रमकी जड़ तो वेदमें ही है। अिमलिअे कोअी हिन्दू वर्णाश्रमकी अपेक्षा तो नहीं कर सकता। अिस प्रथाका समझ कर असमें कोअी दोष दिखे, तो असु ज्ञानवृझ कर छोड़ देना चाहिये; अगर यह प्रथा धर्मकी निर्दोष विशेषता हा, तो असकी परवरिश करनी चाहिये। वर्णाश्रममेंसे आश्रम धर्मका तो नाम और अमल दोनों मिट गये, असा कहा जा सकता है। हिन्दू धर्ममें ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास, ये चार आश्रम माने गये हैं, और ये हर हिन्दूके लिअे हैं। लेकिन ब्रह्मचर्य और वानप्रस्थका पालन शायद ही कोअी करता होगा। नामका संन्यास थोड़ी मात्रामें भले ही पाला जाता हो। मगर आश्रम अेक दूसरेके साथ अितने मिले जुले हैं कि अेकके बिना दूसरा पाला ही नहीं जा सकता। जिसका आज सब पालन करते हैं, वह तो गृहस्थका काम है — गृहस्थका धर्म नहीं। पर याद रखना चाहिये कि गृहस्थका काम यानी आबादी बढ़ानेका काम तो दुनियामें सभी कोअी करते हैं। धर्ममें मर्यादा, विवेक वगैरा हांत हैं। असलिअे जो दम्पति मर्यादा और विवेकके साथ रहते हैं, वे गृहस्थका धर्म पालते हैं। जो मर्यादाके बिना चलते हैं, वे फर्जे अंश करनेवाले नहीं, बल्कि स्वेच्छाचरी हैं; और आजकल गृहस्थका काम तो ज्यादातर मनमानी और व्यभिचारको बढ़ाता है। व्यभिचारी या स्वेच्छाचारी जीवनके बाद वानप्रस्थ और संन्यास नामुमकिन समझना चाहिये। अससे यही मानना चाहिये कि आश्रम धर्म तो मिट ही गया। अस धर्मको फिरसे अँचा अुठाना ज़रूरी

है। यह किस तरह हो सकता है, इसका विचार करना इस प्रस्तावनाके क्षेत्रके बाहर है।

अब वर्ण-धर्मपर आये। असलमें वर्ण चांग माने गये हैं। उसका कह सकते हैं कि आज तो वर्ण बेगुमार हैं। फिर भी लोग अपनेका चार वर्णोंमें गिना सकते हैं। कोअी अपनेको ब्राह्मण कहता है, कोअी क्षत्रिय और कोअी वैश्य। अपनेको शूद्र बतानेमें सबको शर्म आती है। शूद्र अपना परिचय उपजातियोंसे ही देते हैं। तीन वर्णोंमें भी उपजातियाँ हैं, मगर मुन्हें अपनेको ब्राह्मण वगैरा बतानेमें शर्म नहीं आती। इस तरह वर्ण नामका रह गये हैं।

लेकिन अइंसान अपनेका कोअी विशेषण लगा ले, तो उसीसे वह उसके लायक नहीं बन जाता। काले रंगका आदमी अपना रंग लाल कहे तो लाल हो नहीं सकता। इसी तरह अपनेको ब्राह्मण बताकर कोअी ब्राह्मण बन या रह नहीं सकता। ब्राह्मण होनेकी आखिरी कसौटीपर तो वह तब खरा अउतर सकता है, जब ब्राह्मणके गुण अपनेमें मूर्तिमंत कर ले। इस तरह सोचनेपर हम देखेंगे कि वर्ण-धर्म भी मिट गया है। व्यवहारमें हम 'वर्ण' नाम रख सकते हैं तो यह समझा जा सकता है कि हम सब शूद्र हैं। लेकिन असलमें तो हम शूद्र भी नहीं माने जा सकते, क्योंकि धर्मशास्त्रमें तो वर्णको धर्म माना है। इसलिये शूद्र वर्ण भी धर्म है। और धर्म तो अपनी मरजीसे मंजूर किया जाता है। उसके पालनेमें शर्मकी तो गुंजायश ही नहीं। धर्मके तौरपर शूद्रपनका अमल करनेवाले कितने नजर आयेंगे? दिनोंके फेरसे हम शूद्रपनको पहुँच गये हैं। कोअी यह कहे कि वर्णोंके करनेके काम तो होते ही रहते हैं, इसलिये वर्णधर्म नहीं मिटा। वे कहेंगे कि जो आदमी जिस वर्णका काम करता है, वह उसी वर्णका गिना जायगा। मेरे खयालसे यह वर्णधर्म नहीं। जहाँ काममें मिलावट हो और सब अपनी अपनी मरजीसे, जो अच्छा लगे वही करें, तो मैं उसे वर्णका संकर या दोगलापन हुआ मानूँगा। वर्णका जन्मके साथ अनिवार्य नहीं तो बहुत नजदीकका सम्बन्ध है। जो जिस वर्णमें पैदा हो, वह उस वर्णके काम धर्मभावनाके साथ करे, तो वह वर्णधर्म पालता है। इस तरह धर्म पालनेवाले आज

अंगुलियोंपर गिने जा सकते हैं। वर्ण-धर्मके पालनेमें स्वार्थकी गुंजायश नहीं, या वह गौण है। वर्ण-धर्ममें तो परमार्थ ही हो सकता है, या फिर उसका मुख्य स्थान हो। ब्राह्मण ब्रह्मको जानने और बतानेमें ही वक्त लगाये और यह माने कि उसका गुजर भगवान चलाता है। क्षत्रिय प्रजाको पालनेका फर्ज अदा करे और उसके बदलेमें गुजारेके लिये ओक हृदके भीतर खर्च ले। वैश्य जनताकी भलाअीके लिये खेती, गायकी परवरिश और व्यापार करे; जो रुपया मिले उसमेंसे सच्चा वैश्य अपने गुजरके लायक रखकर बाकीको लोगोंकी भलाअीमें लगा दे। अिसी तरह शूद्र सेवा करे तो धर्म समझकर करे।

मामूली तौरपर वर्णका फैसला जन्मसे किया जाता है। ओक हृद तक कर्मसे भी किया जाता है। ब्राह्मणका लड़का ब्राह्मणके घर पैदा होकर ब्राह्मण तो कहलायेगा, मगर बड़ा होनेपर उसमें ब्राह्मणके लक्षण या गुण न दिखें, तो वह ब्राह्मण नहीं माना जायगा। वह तो पतित हुआ। अिससे अुलटा, जो दूसरे वर्णमें पैदा होकर ब्राह्मणके लक्षण साफ साफ और रोज बताया करेगा, वह भले ही खुदको ब्राह्मण न कहे तो भी ब्राह्मण माननेके लायक होगा। दुनिया अुसे ब्राह्मण ही मानेगी।

अिस धर्मके मुताबिक अगर दुनिया चले तो सब जगह सन्तोष फैले, झूठी होड़ मिटे, अधीर्या दूर हों, कोअी भूखों न मरे, जन्म मरण बराबर रहें और बीमारियाँ जाती रहें।

लेकिन वर्ण अगर धर्म बन जाय और अधिकार न रहे, तो वर्ण वर्णके बीच भेद न रहे, और सब वर्ण बराबर हो जायँ। बहुत समयसे हिन्दू धर्ममें धर्मके नामपर अुचनीचके भेद घुस गये हैं। यह वर्ण-धर्मका टेढ़ामेढ़ा रूप है, भयंकर रूप है। पुरखोंने कठिन तपस्यासे जिस बड़े कानूनको हूँद निकाला था और जिसपर भरसक अमल किया था, उसका अनर्थ करके आज हमने अुसे दुनियाके लिये हँसीकी चीज बना दिया है। नतीजा यह है कि आज हिन्दुओंमें भी अैसा फिरका निकल पड़ा है जो वर्ण-व्यवस्थाका नाश करनेपर तुला हुआ है, क्योंकि वह मानता है कि वर्णसे हिन्दू जाति पामाल हुअी है। और आज वर्णके नामपर जो हालत पाअी जाती है, उसमें तो हिन्दू जातिका नाश ही है।

आज रोटी-बेटीके व्यवहारकी हृदयबन्दीमें वर्ण-धर्मका पालन समाया हुआ है। ब्राह्मण ब्राह्मणके साथ और उसमें भी भला हो तो अपनी उपजातिके साथ ही रोटी-बेटी व्यवहार रखेगा और उसीमें अपने धर्मकी अतिथ्री मानेगा। उत्तरमें कहावत है कि 'आठ कनौजिये नौ चूल्हे।' यह है धर्मपालन! सब अंक दूसरेके दूनेसे नापाक हो जात हैं। इसी तरह खाने पीनेके बारेमें जो विवेक रखा जाता है, उसे भी वर्ण-धर्मका जुझ मानकर ब्राह्मणपन या क्षत्रियपन वगैराका खात्मा इसीमें समझा जाता है कि फलों चीज खाओ जाय या न खाओ जाय। फिर क्या अचरज कि दुनिया अंसे धर्मको दुतकारती है और कितने ही समझदार हिन्दू भी इस अव्यवस्थाका मिटानेपर तुले हैं।

यहाँ मेरे कहनेका मतलब यह बिल्कुल नहीं कि रोटी-बेटी व्यवहारकी मर्यादा या खानपानके विवेककी गुंजायश ही नहीं। मैं खुद हर किसीके साथ सब कुछ खानेका धर्म न मानता हूँ, न पालता हूँ। हर किसीके साथ बेटी-बेटी लेना-देना मनमानी समझता हूँ। जिस तरह हर व्यवहारमें कड़ी मर्यादा या संयम जरूरी है, उसी तरह इसमें भी जरूरी है, मेरा ऐसा मानना है कि खाने पीनेका शास्त्र है। मनुष्य सब कुछ खानेवाला प्राणी नहीं है। उसके खानेकी चीजोंकी भी हद है। लेकिन रोटी-बेटी व्यवहार और खानपानकी तमीज़पर वर्ण-धर्मका दारमदार नहीं है। वर्ण-धर्म अंक अंक ही शास्त्र है। मैं यह कल्पना कर सकता हूँ कि अंक वर्णकी दूसरे वर्णमें शादी करनेमें कोओ तुराओ नहीं है। मैं मानता हूँ कि सफाओ वगैराके नियमोंका पालते हुआ और खानपानमें विवेक करत हुआ सब वर्णके लोग अंक पंगतमें बैठकर खाँ तो कोओ दोष नहीं। पुराने जमानेमें रोटी-बेटी व्यवहार इस तरह होनेके बहुतसे सबूत हैं। रोटी-बेटी व्यवहारका वर्ण-धर्मके साथ जोड़ देनेमें हिन्दूधर्मका भारी नुकसान पहुँचा है।

यह सही है कि वर्ण-धर्मकी खोज हिन्दूधर्ममें हुआ है, मगर इससे कोओ यह न माने कि ये नियम हिन्दुओंको ही लागू होते हैं और दूसरोंको नहीं होते। हर धर्ममें कोओ न कोओ विशेषता होती ही है। मगर यह विशेषता असूलके तौर पर हो तो वह सब जगह

फैल जानी चाहिये । दुनिया भले ही आज उसे न माने । अतनी ही वह घाटेमें रहेगी । वर्ण-धर्मके बारेमें मेरा यह मानना है । अिसे में अेक बड़ी भारी खोज मानता हूँ । आज नहीं, तो कल दुनियाको उसे मानना ही होगा ।

अिस असूलको थोड़ेंमें में अिस तरह रखता हूँ : जाँ आदमी जिस खानदानमें पैदा हो असका धन्धा, अगर वह नीतिके खिलाफ न हो तो, धर्मभावसे करे और अस करते हुअे जो आमदनी हो, असमेंसे मामूली गुजरके लायक रखकर बाकीको सार्वजनिक यानी सबकी भलाअीमें लगायें ।

चार वर्णोंको शरीरके चार अंगोंकी अपुमा वेदमें दी गअी है । शरीरके अंगोंमें जैसे यह भेद नहीं होता कि अेक अूँच और दूसरा नीच है; और अंगोंमें समझ हो और अूँचनीचका भेद वे रखें, तो शरीररूपी राष्ट्रके टुकड़े टुकड़े हो जायँ । अिसी तरह जगत्का राष्ट्र भी अपने वर्ण-रूपी चार अंगोंके बीच अूँचनीचका भेदभाव रखे तो टुकड़े टुकड़े हो जाय । आज जगतमें अूँचनीचके भेद हैं, और जगतमें जो आपसी झगड़ा चल रहा है, असके वे खास कारण हैं । अिस बातके समझनेमें मामूली आदमीको भी मुश्किल न होनी चाहिये कि यह लड़ाअी वर्ण-धर्म पर चलनेसे मिट सकती है । वर्ण-धर्ममें हर वर्णको अपना अपना काम धर्म समझकर करना है । पेट भरना तो अिसका थोड़ा-सा फल है । यह मिले या न मिले तो भी चारों वर्णोंको अपने अपने धर्ममें लगा रहना है । अिस वर्ण-धर्मपर अमल हो, तो आजकल दुनियामें जो अूँचनीचपन मौजूद है, असकी जगह बराबरीका बोलबाला रहे, सारे धन्धे अिज्जत और कीमत दोनोंमें अेक-से समझे जायँ, और वजीर, वकील, डाक्टर, व्यापारी, चमार, बढ़अी, भंगी और ब्राह्मण बराबर बराबर कमायें । जहाँ वर्ण-धर्म पाला जाता हो वहाँ अैसी दया अपुजानेवाली हालत हो ही नहीं सकती, न होनी ही चाहिये कि तीन वर्ण ज्यादा कमायें और शूद्र थोड़ा कमाये, या क्षत्रिय महलोंमें चढ़कर बैठें, ब्राह्मण भिखारी यानी श्लोपड़ेंमें रहे, वैश्य बड़ी बड़ी हवेलियाँ बनायें और शूद्र बिना घरबारका गुलाम बनकर रहे ।

मेरे कहनेका मतलब यह नहीं कि जिस वक्त वर्णाश्रम-धर्म खोज निकाला गया था, उस वक्त भी हिन्दू समाज इस आदर्श तक पहुँच गया था। मुझे मालूम नहीं कि किस समय वर्ण-धर्म इस अँचे दर्जे तक पहुँचा था। मगर मैं अितना कह सकता हूँ कि वर्णधर्मका आदर्श यही हो मरना है। समझदारके लिये इस धर्म पर चलना महल है। ऐसा वर्ण-धर्म सिर्फ हिन्दुओंके लिये ही नहीं, बल्कि सारी दुनियामें जो समझ सकते हैं उन सबके लिये है।

अस व्यवस्थामें जिसके पास जो जायदाद होगी, उसका वह सारी जनताके लिये रखवाला होगा। वह अपनेको कभी उसका मालिक नहीं मानेगा। राजा अपने महलका या प्रजासे जो कर वसूल करता है उसका मालिक नहीं, बल्कि रखवाला है। वह अपने लिये पेटभर लेकर बाकीको प्रजाके लिये खर्च करनेका बँधा हुआ है। यानी प्रजासे वह जितना लेगा उसमें अपनी होशियारीसे बड़ती करके उसी प्रजाको किसी न किसी तरह लौटा देगा। यही बात वैदिकी है। शूद्रका तो कहना ही क्या? और अगर किसी भी तरह मुकाबिला किया जा सकता है तो शूद्र सिर्फ धर्म समझकर सेवा ही करता है। जिसके पास कोअी जायदाद कभी होनेवाली ही नहीं और जिसे मालिक बननेका लालच तक नहीं, वह हजार नमस्कारके लायक है और सबसे अँचा है। धर्मपर चरनेवाला शूद्र अपने बारेमें ऐसा न समझेगा, लेकिन देवता तो उसपर फ़ाट बरसायेंगे। यह वाक्य आजकलके सेवा करनेवालोंके बारेमें भले ही शोभा न दे। वे चप्पा भर जमीनके मालिक न होकर भी मालिकी चाहते हैं। यानी वे अपने शूद्रपनको सुख देनेवाले धर्मके तौरपर नहीं देखते हैं, बल्कि भोगकी अिच्छा पूरी न होनेसे दुखदायी समझते हैं। अिसीलिये मैंने तो आदर्श शूद्रको प्रणाम किया है, और दुनियासे कहता हूँ कि वह भी उसके सामने सिर झुकाये।

लेकिन यह शूद्रका धर्म उस पर लादा नहीं जा सकता। तीन वर्ण अपनेको प्रजाके सेवक मानते हैं और जो जायदाद उनके पास रहे उसके सबकी भलाअीके लिये अपनेको रखवाले साबित कर सकते हैं, अुन्हींके मुँहसे शूद्र धर्मकी बढ़ाअी करना अच्छा लग सकता है। आज तो जहाँ

तीन वर्ण सिर्फ नामके रह गये हैं, अपना धर्म पालनेकी किसीको सूझती नहीं और अपनेको ऊँचे वर्णका मानकर शूद्रको हलके वर्णका समझते हैं, वहाँ जिसमें कोअी अचरजकी बात भी नहीं, दुःखकी बात भी नहीं कि शूद्र उनसे भीष्या करें और जो सम्पत्ति वे लेकर बैठ गये हैं उसमें हिस्सा बँटाना चाहें । वर्णको धर्मके तौरपर बताकर शोधकोंने ऐसा सुझाया है कि वर्ण-धर्मपर अमल करनेमें जबरदस्तीकी बू तक नहीं आनी चाहिये । वर्ण-धर्मको पालनेसे ही दुनियाका काम चल सकता है । जिस धर्मका पालन करनेसे ही जगतका छुटकारा है । और जिस धर्मपर अमल करानेके लिये हर वर्णको खुद उसपर अमल करते करते मर जाना है; दूसरोंसे जबरदस्ती अमल नहीं कराना है ।

जहाँ होइ बहुत अच्छी चीज समझी जाती है, रुपया कमाना बहुत बड़ा काम माना जाता है, जहाँ सब जैसा जीमें आये वैसा धन्धा करनेकी अपने लिये छूट मानते हैं और जहाँ सब जिस माला हालतमें हैं उससे ज्यादा अच्छी कर लेना धर्म समझते हैं, ऐसे जमानेमें यह कहना कि वर्ण-धर्म जगतका बहुत बड़ा नियम है हँसीके लायक बात मालूम देती होगी । जिसको फिरसे ऊँचा उठानेकी बात करना जिसमे भी ज्यादा दिल्लगी मानी जा सकती है । फिर भी मुझे पक्का भरोसा है कि आजकलकी भाषामें कहें तो यही सच्चा साम्यवाद है । गीताकी भाषामें यह बराबरीका 'धर्म' है, पर 'वाद' नहीं । जिस धर्मपर थोड़ा अमल करनेसे भी अमल करनेवालेको और दुनियाको सुख मिलता है ।

यहाँ यह कहना जरूरी है कि वर्ण-धर्मका यह लाजमी अंग नहीं कि वर्ण चार ही होने चाहियें; सिर्फ अितना ही कहना काफी है कि सब अपने अपने वर्ण-धर्मका अमल करके उसीमेंसे रोजी निकाल लें । वर्ण-धर्मको फिरसे उठानेका विचार करते हुअे शायद असा मालूम पड़े कि वर्ण चार नहीं बल्कि ज्यादा या कम होने चाहियें, तो मुझे खुदको अचंभा नहीं होगा ।

वर्धा, ता० २३-९-'३४

मोहनदास करमचंद गांधी

वर्ण - व्यवस्था

पहला हिस्सा

वर्ण और अमुके धर्म

वर्ण - व्यवस्था

दक्खिनकी अपनी यात्राके दरमियान वर्ण-व्यवस्था और ब्राह्मण-अब्राह्मण वगैरा जात-पाँतके बारेमें मैंने जो खयाल ज़ाहिर किये थे, उनको वजहमे मुझे बहुतसे गुस्सेसे भरे हुअे खून मिल रहे हैं। उन खतोका मैं यहाँ नहीं छापता, क्योंकि उनमें मित्राय गालियाँ देनेके शायद ही और कुछ होता है। जिनमें गालियाँ नहीं होतीं उनमें भी कौआ दलील नहीं रहती। चिढ़ तो कौआ दलील नहीं कही जा सकती।

फिर भी कुछ पत्रासे अठनेवाली दलीलोंका जवाब देना जरूरी है। कुछ लोग कहते हैं कि जात-पाँत कायम रखनेमे हिन्दुस्तानका सत्यानाश होगा, क्योंकि जात-पाँतके भेदने ही हिन्दुस्तानका गुलामीमें डुबोया है। मेरी नज़रमें हमारी आजकी गिरी हुआ हालतकी जड़में हमारी जात-पाँतका भेद नहीं है। हमारे गलेमें गुलामी अिमलिअे आयी कि हमने अपने लालचके बस हाँकर राष्ट्रीय गुण वढ़ानेकी तरफ लापरवाही रखी। मैं तो अुलटे यह मानता हूँ कि वर्ण-व्यवस्थाने अंक हदतक हिन्दू-समाजको टुकड़े-टुकड़े होनेसे बचाया है।

लेकिन दूसरी संस्थाओंके साथ-साथ ही अस संस्थामें भी अति या ज्यादातीने घुसकर भारी नुक़सान किया है। वर्ण-व्यवस्थामें बुनियादी तौरपर सांची गयी समाजकी चौमुखी रचना या बनावट ही मुझे तो असली, क़ुदरती और जरूरी चीज़ दीखती है। बेशुमार जातियाँ और अपजातियोंसे कभी-कभी कुछ आसानी हुआ होगी, लेकिन असमें शक नहीं कि ज्यादातर तो जातियोंमे अड़चन ही पैदा होती है। ऐसी अपजातियाँ जितनी जल्दी अेक हो जायँ अतना ही असमें समाजका भला है। अपजातियोंमें अस तरहकी दिखायी न देनेवाली जोड़-फोड़ और नयी रचना शुरू होती आ रही है, और होती ही रहेगी। लोकमत और जनताके नैतिक दबावका असर यह काम

कर लेनेके लिये काफ़ी है । लेकिन असली वर्ण-विभागको ही जड़से नाबूद करनेकी किसी भी कोशिशका तो मैं विरोध ही करूँगा ।

वर्ण-विभागमें भेदभाव, असमानता या अँच-नीचपन तो किसी तरहका है ही नहीं; और मद्रास या दक्षिण-जैसे प्रान्तों या सूबोंमें, जहाँ उसे भेद पैदा होने लगे हैं, वहाँ उन्हें ज़रूर रोकना चाहिये । लेकिन अियके उसे कभी-कभी होनेवाले दुरुपयोग या बेजा अिस्तेमालके कारण सारी व्यवस्था या निज़ामका मौतकी सज़ा नहीं दी जा सकती । अियमें आगानांमे सुधार हो सकता है । हिन्दुस्तानमें और सारी दुनियामें आज देखत-देखत जो लोक-युग फैल रहा है अियके अमरमे हिन्दू जातियोंमें भी अँच-नीचके खयाल अपने आप मिट जायँगे । मिफ़्र वादरी अंगोंका तोड़ देनेमें लोक-युग नहीं फैलता । यह कोअी गणितका सवाल नहीं कि सगलतामे हिमाव बैठ जाय । अियकी गुन्थियाँ मुलझानेके लिये दिलोंमें तन्वीली होनी चाहिये, समाजकी वृत्ति या तरीयतका झुकाव बदलना चाहिये । अगर राष्ट्र-भावना या क़ौमी खयालके फैलावमें जात-पात अंक रुकावट हो, तो हिन्दुस्तानमें हिन्दू, मुसलमान, पारसी, अीमाअी और यहूदी वसोंग धर्मोंका अेक साथ होना भी रुकावट ही है । लोक-मत्ता या जसङ्गियत और राष्ट्रीयता या क़ौमियतकी भावना तो आपगके भाअीचारेपर ही पनपती है । और आज अेक अीमाअी या मुसलमानका सगा माँ-जाया भाअी ही माननेमें मुझे तो किमी तरहकी अडचन मालूम नहीं होती । हमें यह कभी न भूलना चाहिये कि जिम हिन्दू-धर्मने वर्ण-व्यवस्था पैदा की है, उसी हिन्दू-धर्मने मनुष्यकी सबसे अँची भलाअी साधनेके लिये हमें सिर्फ़ अिनसानके तअि ही नहीं, बल्कि जीवमात्रके तअि अपनापन गाधनेका आदर्श भी दिया है ।

अेक भाअी सुझात हैं कि हमें अपनी वर्ण-व्यवस्था तोड़कर युरोपकी वर्ण-व्यवस्था मंज़ूर कर लेनी चाहिये । यानी मेरे खयालसे वे यह कहना चाहते हैं कि हमारी वर्ण-व्यवस्थामें पीढ़ी-दर-पीढ़ीकी जो भावना है, मिर्फ़ उसीको आज हमें नष्ट करना है । मुझे तो लगता है कि पीढ़ी-दर-पीढ़ीका असूल हमेशासे है और रहेगा । उसे बदलनेकी कोशिशमे सदा गड़बड़ हुअी है और हांगी ही । अेक ब्राह्मणका अुम्रभर ब्राह्मण ही माननेमें मैं तो बहुत फ़ायदा देखता हूँ । अगर वह ब्राह्मणको मोहनवाले तरीके पर न चले,

तो वह अपने आप सच्चे ब्राह्मणको मिलनेवाली अिज्ञत खो बैठेगा । यह साफ़ है कि हम राज-राज व्यक्तियोंके हर कामकी अच्छा-बुराईका हिमाव निकालकर उसकी हसे हर वक्त व्यक्तियोंका सजा या अिनाम देने बैठेंगे, और राज-राज ब्राह्मणको शूद्रकी और शूद्रको ब्राह्मणकी पदवी देने लेंगे तो मुश्किलोंका पार न रहेगा । जां हिन्दू पुनर्जन्मका माननेवाले हैं — और हरअक हिन्दूको पुनर्जन्मका माननेवाला होना ही चाहिये — अुन्हें यही मानना पड़ेगा कि कुदरत किसी भी तरहकी भूल किये बिना बुरे काम करनेवाले ब्राह्मणका अिन्यानी तरक्कीके निचले दरजेपर डालेगी, और अिसी तरह अिस जन्ममें ब्राह्मणकी ज्जिन्दगी बितानेवालेका ब्राह्मणके दरजेपर पहुँचाये बिना न रहेगी ।

अब गंटी-वेटी-व्यवहारके बारेमें जाँच करें । मैं मानता हूँ कि अक राष्ट्रीयता या क्रॉमियनके भावका फैलानेकी खातिर अक थालीमें खाना या चाहे जिसके साथ शादी करनेकी दृष्ट लेना जरूरी नहीं । मैं यह नहीं मानता कि किसी कितने ही आजाद ज़मानेमें या स्वतंत्र राज्य-विधानमें समाजके सभी लोगोंमें खाने-पीने या शादी-व्याहके बारेमें अक-सा आचार-व्यवहार होगा । समाजके जुदा-जुदा वर्गों या तबकोंमें आचार-व्यवहार अलग-अलग तरहके होंगे ही । अिस विविधताके बीचमें ही हमें हमेशा अकता हूँदनी और क्रायम करनी होगी । और मैं यह कहनेके लिये तैयार नहीं कि जां भी कोअी आदमी सब किसीके साथ खाने-पीनेमें दर्ज़ समझता है, वह पाप करता है । हिन्दुओंमें भाअी-भाअीके वच्चे अक-दूसरेके साथ व्याहे नहीं जाते । अिसमें अुनके आपसके प्रेममें खलल नहीं पड़ता । अुलटे अुनका यह रिवाज अुनके आपसी सम्बन्धका और भी पाक और साफ़ बनाता है । वैष्णवोंमें मैंने बहुत-सी माँओंको देखा है, जो मर्यादा पालती हैं और घरकी रसोअीमें नहीं खाती या घरके आम मटकेका पानी नहीं पीती । अिसमें अुनमें खुदशरजी या अुद्वताअी आती या अुनका प्रेम और ममता घटती नहीं देखी गअी । ये बातें सिर्फ़ संयम और तालीमसे सम्बन्ध रखती हैं । खुद अिनमें कोअी खास दांप नही है । अिसमें अति या ज्यादती घुस जाय, तो वह जरूर नुक़सानदेह हो । और तिसपर भी अगर अूँचेपनके घमण्डसे वैसा किया जाय, तो वह संयम, संयम न रहकर दर असल मनमानी ही बन जाता

है और इस कारण घातक साबित होता है। मगर ज़माना जैसे-जैसे आगे बढ़ता है, और नयी-नयी ज़रूरतें और बातें पैदा होती जाती हैं, जैसे-जैसे रांटी-बेटी-व्यवहारके वारेमें भी बहुत ही सावधानीके साथ हमें सुधार और फेरफार अवश्य करने पड़ेंगे।

अस तरह मैं हिन्दू वर्ण-व्यवस्थाकी हिमायत करता हूँ, हमेशा करता आया हूँ; और फिर भी मैं कहता हूँ कि हिन्दुओंमें जड़ जमाकर बैठी हुअी अद्वैतपनकी भावना मानव-जातिके लिअे घोर-से-घोर अपमान रूप है। अस भावनाकी जड़में संयम नहीं, बल्कि अद्वैतपनकी अशुद्धत भावना ही है। अस भावनाने अपनी किसी भी तरहकी क्राविलीयत नहीं बतायी; अलटे जो लोग किसी भी बातमें हमसे अलग नहीं, और जो कअी तरहसे समाजकी भारी सेवा कर रहे हैं, असे अिन्सानोंके अेक बहुत बड़े समूह या गिराहकों हमने अिन्सानोंमेंसे निकाल डालनेका घोर पाप किया है। अस पापमेंसे हिन्दू-धर्म जितनी जल्दी बचकर निकल जाय, अतना ही असका बड़ापन और मान है। अस हीन भावनाको क्रायम रखनेके पक्षमें अेक भी दलील मुझे अभीतक नहीं मिली। और असी पापी प्रथाकी हिमायत करनेवाले शास्त्रोंके वचनोंको — जिनके मही होनेमें शक है — रद्द करनेमें मुझे ज़रा भी हिचकिचाहट नहीं होती। अलवत्ता, प्रौढ़ बुद्धि और आत्माकी आवाज़के खिलाफ़ जानेवाली शास्त्रकी किसी भी हिदायतके आगे गिर झुकानेसे मैं अिन्कार करूँगा। शास्त्रका सवृत या प्रमाण जब बुद्धिके पात्र पर खड़ा होता है तब वह कमज़ोरोंके लिअे मददगार साबित होता है और अुन्हें अँचा अुठाता है। लेकिन जब वह आत्माकी गहराअीमेंसे आनेवाली पुकारमे पवित्र हुअी बुद्धिके तक्राज़ेका संताप देनेसे अिन्कार करता है, और असकी जगह ही रोक देना चाहता है, तब वह अिन्मानको नीचे गिराता है।

वर्णसंकर या वर्णाश्रम ?

अंक पढ़ी-लिखी वहन लिखती हैं —

“मफरमे अेक भाअीका मेरा साथ हा गया । अुन्होंने वरतेजमें हुअी राजपूत-परिपदकी भेजे हुअे आपके भंदेसेकी* तरफ मेरा ध्यान खींचा । पदकर मनके भीतर बहुत दिनोंमे दबा हुआ विरोध अुछल आया । जो सोच-विचार करे, वही मनुष्य है । अिमल्लिअे मुझे आशा है कि मेरे विचारकी आप सह लेंगे, और वह आपके विचारसे निराला हा, तो भी अुमपर ध्यान देंगे । मन् १९२० में आश्रम और अुमका वृत्ताओ-घर देखकर मनमें ये विचार आये थे । बादमें जाते रहे, मगर कभी-कभी दिव्याओ दे जाते । पर अभी थोड़े दिन हुअे, ये विचार मेरे मनमें हमेशाके लिअे घर कर बैठे हैं, और राजपूत-परिपदकी भेजा गया आपका भंदेसा अितने अुभाइका आखिरी निमित्त बना है ।

“जहाँ सारा स्टेशन अेक भिगसे दूमे भिगत फौजो दगसे कन्धपर लटकती हुअी तलवारोंवाले स्वयंसेवकोंमे भरा हुआ था, जहाँका सारा वातावरण क्षत्रिय जातिकी वहादुरी और दाक्षिण्यकी यादसे गंजता था, वहाँ अुनकी चरखोंकी तलवारोंकी जगह देनेकी आपकी मलाह क्या ओसाओ पादरियों-अैनी ही बिलकुल बेमौका न थी ? क्या आपको पुराने जमानेके ऋषियोंकी तरह ब्राह्मणकी ज्यादा सच्चा ब्राह्मण, क्षत्रियकी आदर्श क्षत्रिय और वैश्यकी सच्चा वैश्य बननेकी मलाह न देने चाहिअे ? ब्राह्मणकी निशानी पोथी या कलम है । राजपूतकी तलवार, और वैश्यकी चरखा या हल है । आप भले हो अपनेकी जुलाहा या किमान कहलानेमें अभिमान या फख समझे । अैसा करनेमें आप अपने जातिधर्मके कुदरती झुकावकी ही बफादारो करते हैं । लेकिन आपके-अैसा वर्णाश्रम मानने-वाला हिन्दू ब्राह्मणों और क्षत्रियोंमे अपने कुदरती जातिधर्म छुड़ाकर वैश्य धर्म मनवानेका किसलिअे अितना आग्रह करना है ? क्या वैश्यवृत्ति अग्निधार किये दगैर आज क्षत्रिय गरीबोंका बचाव और सेवा कर ही नहीं सकते ?

“भारतवर्षके बड़े आदमियोंने तो हमेशा हर शस्त्रकी अुमके स्वभावके माफिक अपना फर्ज अदा करना ही सिखाया है । आपने ही पहले-पहल अिन नव फर्जोंकी ताकतमें रखकर सारे राष्ट्रकी अेक वैश्यवृत्ति ही अख्तियार करनेका अुपदेश या ननीहत देना शुरू किया है । वैश्यधर्मकी आप भले ही अँचा अुठायें

* देखिये ‘क्षत्रिय धर्म’ शीर्षक लेख, प्रकरण १८ वाँ ।

लेकिन कृपा करके ब्राह्मण-क्षत्रियोंको पीछे न धकेलिये। आप अपने जातिको भले ही आध्यात्मिक बनायें, मगर दूसरी जातिवालोंको अपनी विभूतिके जोरसे लुभाकर जुलाहे और पिजारे बना बनाकर दुनयावो या सामारिक किमलिअे बना रहे हैं? मेरी गायमें तो अपने आश्रमके विनोबा और बालकोवाकी आपने ज़िम किस्मका आध्यात्मिक जुलाहा बनाया है, अुमके वजाय वे शुद्ध ब्राह्मण रहे होते और अपनी मेधाका पूरी तरह विकास करते, तो वे राष्ट्रकी ज़्यादा मगीन सेवा करते।”

यहाँ मैंने सारा ख़त नहीं दिया है, पर अुमका सार दे दिया है। बाक़ीके हिस्सेमें अ़पर जो कुछ दिया है उसकी छान-बीन ही है। लिखनेवाली शिक्षित वहन जन्मसे हिन्दू हैं, और मेरी तरह वे भी हिन्दू होनेका दावा करती हैं। कातने को मैंने सम्प्रदायों या फ़िरक़ोंके धर्मोंसे अुम्दा धर्म माना है। मैंने यह आशा रखी थी कि महज़ अिसीलिअे विद्वान् मित्र अिसका कोअी ग़लत अर्थ नहीं करेंगे। पर वैसा होना बदा न था। अ़परवाली विदुषी बहिन बताती हैं कि चरखेका विरोध करनेवाली वे अकेली नहीं हैं। अिसलिअे मुझे अुनकी दर्तालोंकी जाँच धीरजके साथ करना होगा।

सन् १९०४से आज तकके अख़बार चलानेके अपने अनुभव या तज़रबेमें मैंने देखा है कि अख़बारोंके सम्पादकोंके पास आनेवाले संवादोंमें ज़्यादातर टीका या नुक़ताचीनी विरोधी या मुख़ालिफ़की बातके वारेमें पूरी जानकारी न होनेसे ही होती है। अिस अुदाहरणमें अिन वहनको समझना चाहिअे था कि चरखेका सँदेसा मैंने अकेले अिस देशके हिन्दुओंको ही नहीं दिया है। यह सँदेसा तो ख़ी, पुरुष, मुसलमान, पारसी, अीसाअी, यहूदी, मिक्ख और अिसी तरह किसी भी अपवादके बिना अपनेका हिन्दुस्तानी कहलानेवाले हिन्दुस्तानके हरअेक वाशिन्देके लिअे है। अितनी बात ये वहन याद रखतीं, तो मैं मानता हूँ कि अुनकी टीका दूसरी ही तरह लिखी जाती। तब वे देखतीं कि मैंने तो हिन्दुस्तानके हाथमें अेक अैसी चीज़ रखी है, जां किराीके धर्मके आड़े नहीं आती, बल्कि अुलटे जिस हदतक अुसे अपनाया जाय, अुस हदतक वह अुस-अुस धर्मको और हिन्दू-धर्मके अुस-अुस वर्ण या जातिकों अुजला करने वाली है। अिसीलिअे मेरा दावा है कि मेरा तरीक़ा वर्णको बिगाड़नेवाला नहीं, बल्कि अुसे शुद्ध करनेवाला है। मैं किसीसे स्वधर्म या बाप-दादोंका धन्धा छोड़नेको नहीं कहता। मैं तो यह कहता हूँ कि सब अपने-

अपने कुदरती पेशेमें चरखा चलाना और जोड़ दे । काठियावाड़के राजपूत जिस बातको जानते थे । उन्होंने मुझसे पूछा था कि क्या मैं उन्हें अपनी तलवारें रख देनेके लिये कहता हूँ ? मैंने कहा — हरगिज़ नहीं । अलटे मैंने तां उनसे यह कहा कि जबतक आप अपनी ताकतपर भरोसा रखते हैं तबतक आपमें से हरएकका कभी धाखा न देनेवाली तलवार अवश्य बँधनी चाहिये । अलवत्ता, मैंने उनसे यह भी कहा कि मेरी कल्पनाका आदर्श क्षत्रिय तो वह है जो तलवार चलाये बिना वचाने का काम करे और बिना मारे अपनी जगह संभालता हुआ मरे । तलवार तो कांभी छीन भी सकता है; लेकिन बिना मारे मार सहकर मर जाननेवालेकी सूझाओको कौन छीन सकता है !

पर यह तो दूसरी बात हुई । अग्रके मवालके जवाबमें तां यही कहूँगा कि राजपूतोंको कमजोरोंका बचाव करनेका अपना धन्धा हरगिज़ न छोड़ना चाहिये । जिसी तरह मैं यह नहीं चाहता कि ब्राह्मण भी विद्या या अल्म देनेका पेशा छोड़ दें । मैं तां अितना ही कहता हूँ कि कताओपी यज्ञसे वे ज़्यादा अच्छे गुरु बनेंगे । वितावा और बालकोबाने काननेवाले, बुननेवाले, और पाखाने साफ़ करनेवाले बनना पसन्द करके अपने ब्राह्मणपनका गौरव या दरजा बढ़ाया है । वे आज अच्छे-से-अच्छे ब्राह्मण बन गये हैं । उनका ज्ञान बहुत संगीन हो गया है । ब्राह्मण वह है, जिसने अश्वरका पहचान लिया । मेरे अिन दोनों साथियोंने चरखेका अपनाकर हिन्दुस्तानके लाखों भूखोंके साथ जितनी हमदर्दी और अपनापन बढ़ाया है उतने ही वे आज अश्वरके अधिक नज़दीक हैं । अश्वरका ज्ञान ग्रंथों या किताबोंके पढ़नेसे नहीं होता । वह ता अपनी आत्माकी गहराओमें, भीतर अनुभव किया जाता है । पुस्तकें तो ज़्यादा-से-ज़्यादा यह कर सकती हैं कि कभी कुछ मदद कर दें । वैसे अक्सर तो वे रुकावट ही साबित होती हैं । अंक बड़े भारी विद्वान् ब्राह्मणको अश्वरका यथाथे ज्ञान पानेके लिये अंक धर्मात्मा क़साओके पास जाना पड़ा था !

और फिर यह वर्णाश्रम भी क्या है ! यह कोओ लोहेकी दीवारोंसे बनाया गया तंत्र नहीं । मेरी नज़रमें तां यह अेक शास्त्रीय सचाओको मंज़ूर करना है, फिर भले ही ये मंज़ूर करनेवाले जानते हों या न जानते हों । इसका यह मतलब नहीं कि ब्राह्मण सिर्फ़ पढ़ने-पढ़ानेका काम करनेके लिये

है। जिसका मतलब यही है कि उसमें यह वृत्ति प्रधान होनी चाहिये। जैसे, अगर कोई ब्राह्मण शरीर-श्रमसे या खुद मेहनत करनेसे कृतभी अिन्कार ही करे, तो सभी उसे बेवकूफ कहेंगे। पुराने ऋषि जंगलोंमें रहते, अपने हाथों लकड़ी काटते, उसके गट्टर बाँधकर सिरपर लाते, डोर चराते और हथियार भी जुटाते थे। यह सब होनेपर भी उनका मुख्य धन्धा अीश्वरी सच्चायीकी तलाश करना ही था। अिसी तरह अपढ़ क्षत्रिय, फिर वह कितना ही बड़ा तलवार चलानेवाला क्यों न हो, निकम्मा गिना जाता था। यही बात वैश्योंकी है। अगर वे अितना अध्यात्मज्ञान या रुहानी अिन्म भी न रखते हों कि जीवनके बारेमें अच्छी लगनेवाली और भला करनेवाली चीज़ोंमें भेद कैसे किया जाय, तो वे समाजके सत्वको चूस लेनेवाले राक्षस ही माने जाने चाहिये। हम देखते हैं कि आजके वैश्य ऐसे ही बन गये हैं, फिर भले ही वे पच्छिमके हों या पूरवके। गीताकी भाषामें तो 'अपनी ही खातिर जीनेवाले ये पापी लोग राक्षसी नरक भोगनेके लायक' हैं। चरन्वेकी योजना तां चारों वर्णोंको — हरअंक हिन्दुस्तानीको उसके अपने धर्मके प्रति ज़ाग्रत करनेके लिये है। अिसके ज़रिये हरअंक मनुष्यको अपना-अपना स्वधर्म या फ़र्ज़ ज़्यादा अच्छी तरह अदा करनेकी प्रेरणा मिलेगी। जब जहाज़ शान्त पानीपर चलता हाता है तब उसपर बैठे लोग अपने-अपने कामोंमें मस्त और मशगूल रहते हैं। पर जब बेड़ा तूफ़ानमें फँसकर डगमगाने लगता है और डूबनेकी नौबत आ जाती है, तब तो अेक वचावके ही ज़रूरी काममें जहाज़परके अंक-अंक आदमीको जीतोड़ मेहनत करनी पड़ती है।

हम यह भी न भूलें कि सारी दुनियाके साथ-साथ हिन्दुस्तान भी आज जगन्व्यापी या आलम-गीर बेपारकी शकलमें मौतके साँपकी घातक लपेटमें फँसा हुआ है। आज तराजू-चाटवाले सिपाहियोंकी जाति हमपर राज करनेका दावा कर रही है। अिस लपेटमेंसे छूटनेके लिये आज हिन्दुस्तानको अपने अच्छे-से-अच्छे ब्राह्मणोंकी सारी बुद्धिमत्ता या अक्लमन्दी खर्च कर देनी होगी। अिस तरह हिन्दुस्तानके अेक-अेक बुद्धिमान आदमीकी और सिपाहीकी ताक़त आज हिन्दुस्तानकी बेपारी-भूख मिटानेके काम लगा देनी पड़ेगी। और अपना यह धर्म वे पूरी तरह पाल सकें, अिसके लिये आज उन्हें कातना सीखनेकी और नियमसे कातनेकी ज़रूरत है।

असके सिवाय, जिन्हें अमीमानदारीसे अपनी रोटी कमानेकी जिच्छा या स्वाहिश है अन्हें भी राजगारके तौरपर बुनाओका धन्धा करनेकी सलाह देनेमें मुझे जरा भी हिचकिचाहट न होगी । साथ ही, जां ब्राह्मण, क्षत्रिय या अिंदी तरह के दूसरे लोग आज बाप-दादेका पेशा छोड़कर धनके पीछे पागल हा गये हैं अन्हें भी मैं जुलाहेका यह अमीमानदार और बेगारज (अुनके लिअं) धन्धा भेंट करता हूँ, और हाथका करघा जा थोड़ी-सी रोज़ी दे अुसीपर सत्र करके अपने मूल धर्मकी तरफ लौटनेका निमन्त्रण या दावत देता हूँ । जिस तरह खाना, सांता वगैरा चीज़ें सभी वर्ण और सभी धर्मके माननेवालोंके लिअे अंक-सी हैं, अुसी तरह, जबतक स्वार्थी तृष्णा और अुगमे पैदा होनेवाली कंगाली हममें घर किये बैठी है, तबतक चरखा अंक-अंक वर्ण, क्रौम और धर्मके लिअे अंक-सा ज़रूरी रहनेवाला ही है ।

अिम तरह मेरा काम वर्ण-संस्कर करनेका — यानी और ज़्यादा गड़बड़ पैदा करनेका — नहीं, बल्कि वर्णाश्रमकी स्थापना करनेका यानी शुद्धिके कामका ज़्यादा मज़बूत बनानेका है ।

ता० २०-७-१२४

३

वर्णावर्णीकी सड़न

नीचेकी हर्काक़तोंसे भरा पत्र मुझे मैमनसिंह ज़िला वैश्य-सभाकी तरफ़से मिला था :—

“बगालके हिन्दुओंके दो खाम दिस्मे किये जा सकते हैं — (१) जिनके हाथका पानी पिया जाता है, और (२) जिनके हाथका पानी नहीं पिया जाता । पहलेमें ब्राह्मण, वैश्य, कायस्थ और नवशाखावाले हैं; दूसरेमें वैश्य-शाह, सुवर्ण-वर्णिक (नीनी), सूत्रधार (बढ़भी), जोगी (जुलाहे), शुण्डी (कलाल), माछी, भोभी, धोपा (धोकी), मोची, कापालिक, नामशूद्र, वगैरा हैं । अन्तिमें कुष्ठका मर्दमशुमारीमें दलित जातिका माना गया है ।

“पहले भागकी पाली तीन जातियाँ हिन्दुओंमें खाम हैं — कुल मालिक हैं — और वे दूसरे भागमें बताओी हुआ जातोंको हिकारतकी निगाहसे देखती

हैं; अतः ही नहीं, बल्कि वे उन्हें कभी तरहसे दुःख देती हैं। उनका मन्दिरोंमें मनाओ है, उनके विद्यार्थियोंको बोर्डिंगमें रहने और खानेकी तकलीफें हैं, और उन्हें होटलों और हलवाबियोंकी दुकानोंमें दूर-दूर रखा जाता है, वगैरा-वगैरा।

“बंगालमें अछूतपन दूर करनेवालोंका काम करनेका तरीका ठीक न होनेसे वे आगे नहीं बढ़ सकते। सन् १९२१ की मर्दमशुमारीके अनुसार बंगालके हिन्दू २,०९,४०,००० से ज्यादा हैं। उनमेंसे १७ फीसदी ब्राह्मण, १६ फीसदी कायस्थ और १० फीसदी वैश्य मिलकर कुल २८,०९,००० होते हैं।

“अब पूरबी बंगाल और मिलहटकी वैश्य-शाह जाति, जो वेपारमें सबसे आगे बढ़ी हुआ है, अकेली ही ३,६०,००० यानी बंगालके कुल हिन्दुओंका ३॥ फीसदी है। उनमें फ्री हजार ३४२ लिख-पढ़ सकते हैं, जब कि वैश्योंमें ६६२, ब्राह्मणोंमें ४८४, कायस्थोंमें ४१३, सुवर्ण-वर्णिकोंमें ३८३, और गंधर्व-वर्णिकोंमें फ्री हजार ३४४ पढ़े-लिखोंकी तादाद है। दूसरे सब आचरणीय वर्णोंमें, यानी जिनके हाथका पानी चलता है उनमें, पढ़े-लिखोंकी तादाद बहुत कम है, और अनाचरणीयों यानी जिनके हाथका पानी नहीं चलता उनकी तो बात ही क्या करना ?

“हमारी जाति कॉलेज, हाओस्कूल, दवाखाने, बावड़ी और पक्के कुंभ, वगैरा कभी मर्यादें चलाती है। अमी तरह उनके अलावा दूसरी तरहके दान करनेमें भी वह पीछे नहीं है। आचार-विचार और महत्मानदारीमें भी किसी दूसरी जातिसे कम नहीं। स्त्री-शिक्षामें भी पीछड़ी हुआ नहीं। अतः हीनेपर भी हम हिन्दू-समाजके दायेंगे बाहर हैं; फिर, हम लोग किसी भी राष्ट्रीय कामसे कभी अलग नहीं रहे, फिर भी आजतक कभी हिन्दू-जातिने हमारा वाजिब दर्जा नहीं माना। अगर समाजकी पाबन्दियाँ हमारे मते न हों, तो हम आजके मुकाबले कितने ज्यादा उपयोगी बन जायें !

“शुण्डियों या कलालोंसे हमें बिलकुल जुदा हैं, पर ये लोग भी अपनेको ‘शाह’ कहते हैं, अतःसे तंगदिल हिन्दू हमें भी अन्हींके साथ मिला देते हैं। हमने तो पूरी खोज-बीन करके साबित कर दिया है कि हमारी जाति अन्तरसे और पश्चिमी हिन्दुस्तानसे आयी हुआ है, और जब ब्राह्मणोंके धर्मका फिरसे जोर बढ़ा तब हम बौद्ध अन्तरको पूरी तरह छोड़ नहीं सके थे, अतः हीने हिन्दू-समाजमें हमें वाजिब जगह नहीं मिली और हमसे नफरत की गयी।”

हो सकता है कि आपरकी हकीकत कुछ बढ़ा-चढ़ाकर लिखी गयी हो, लेकिन मैंने इसे यहाँ यह दिखानेको ही दिया है कि अँच-नीचके भेदकी सड़न हिन्दू-धर्मके मर्मको किस तरह कुतरकर खा रही है। जिन्होंने यह

हकीकत मेजी है अन्हें वे लोग धिक्कारत हैं, जां उनसे अँचे कहलात हैं, और ये खुद अपनेको उन लोगोंसे अँचा और अलग समझत हैं, जां उनसे ज्यादा नीचे माने जात हैं। इस तरह नीचे समझे जानेवाले 'अछूतों' में भी अँच-नीचका यह भेद फैला हुआ है। कच्छके सफ़रमें मैंने देखा कि हिन्दुस्तानके दूसरे भागोंकी तरह कच्छमें भी अछूतोंमें अँचे और नीचेका फ़र्क है, और अँची जातिके अछूत नीची जातिके अछूतोंका छूनेसे भी अिन्कार करत हैं, यही नहीं, बल्कि नीच जातिके अछूतोंके बच्चे जिस पाठशालामें जात हां उन पाठशालामें वे अपने बच्चोंका भेजनेसे साफ़ अिन्कार करत हैं। जहाँ यह हालत हा वहाँ आपसमें रांटी-बेटी-व्यवहारकी बात ही क्या की जाय ? वर्णके फ़र्कका जां भयंकर ग़लत अर्थ किया गया है, अुसीके ये नभूने हैं। और अंक तबका दूसरे तबकेसे अपनेको अँचा माननेमें जां अभिमान या फ़ख़र करता है उन विराध मुक्ताबिला करनेके लिअं मैं अपनेको भंगी कहलानेमें आनन्द अनुभव करता हूँ। क्योंकि मेरी जानकारीमें भंगीमे नीची कोअी जाति नहीं। बेचारा भंगी ही समाजमें काढ़ी है, जिसे सब दुर्-दुरांत हैं, और फिर भी समाजकी तन्दुरुस्तीके लिअं यानी समाजका जीता रखनेके लिअं दूसरे किसी भी तबकेसे ज्यादा जरूरी तबका अिम भंगीका ही है।

जिनकी तरफ़मे मुझे अपरकी हकीकत मिली है उनके साथ मेरी पूरी हमदर्दी है। पर जिनकी तक्रारमें उनमें भी ज्यादा नीचे समझे जाना लिखा है अन्हें वे क्यों अपनेमे नीचा समझें ? ऐसे लोगोंका भी अपने दायरेमें लेकर, जां लाभ दूसरोंका नही मिलत, वे खुद अपने लिअं भी अन्हें न लेने चाहिअें। हिन्दू-धर्ममेंसे कुदरतके खिलाफ़ छोटे-बड़ेपनका यह धन्वा मिटाना हां, तां उसकी जड़ अुखाड़नेके लिअं हममेंसे कितनां ही को ग़नका पानी करना पड़ेगा। मेरे खयालसे जां अँचे हांनेका दावा करत हैं, वे अिम दावेसे ही उसके लिअं नालायक ठहरत हैं। सच्चा और कुदरती अँचापन तां दावा किये बिना ही मिल जाता है। जां सचमुच बड़ा है अुमे बिना चाहे ही सब बड़ा कहत हैं। और वह खुद बड़ा होनेसे जां अिन्कार करता है, सां दिखावेके लिअं या झूठी नम्रतासे नहीं, बल्कि अिम शुद्ध ज्ञानके कारण करता है कि जां अपनेको नीचा मानता है उसके

अन्दर रहनेवाली आत्मा और खुद अपने भीतरकी आत्मामें कोई भी मेद नहीं। सृष्टि या मखलूकके प्राणिमात्रकी तात्त्विक या असूली अेकता और अमेदको जो जानता है उसके लिये ऊँच-नीचके भावकी गुंजायिश ही नहीं। जीवन अेक कर्मक्षेत्र या काम करनेकी जगह है, यह अधिकार और हुक्मतका संचय नहीं। जिस धर्मका पाया ऊँच-नीचके मेदकी प्रथापर है वह बिल्कुल मिटकर ही रहेगा। वर्ण-धर्मके में यह मानी नहीं करता। में वर्ण-धर्मको मानता हूँ, क्योंकि मेरे खयालमें वह अलग-अलग पेशेके लोगोंके कर्तव्य या फ़र्ज़ तय करता है।

अस धर्मके मुताबिक़ ब्राह्मण वही है जो सब वर्णोंका सेवक है — शूद्रों और अछूतोंका भी सेवक है। चारों वर्णोंकी सेवाके लिये वह अपना सब-कुछ कुरबान कर देता है, और प्राणिमात्रकी दयापर जीता है। ओहदाँ, हुक्मत और अधिकारका दावा करनेवाला क्षत्रिय नहीं। क्षत्रिय तो वही है जो समाजके वचाव और समाजकी अिज्जतके लिये अपनी हस्तीको मिटा देता है। अपने ही लिये कमानेवाला और अपनी ही ख़ानिर् धन अिकट्टा करनेवाला वैश्य नहीं, चोर है। हिन्दू-धर्मके वारेमें मेरा जो खयाल है उसके अनुसार पाँचवाँ या अछूत नामका कासी वर्ण है ही नहीं। अछूत कहलानेवाले लोग दूसरे शूद्रोंकी बराबरीके अधिकारवाले समाज-सेवक हैं। में मानता हूँ कि वर्ण-धर्म समाजकी ऊँची-से-ऊँची भलायतीके लिये सांची गयी बढ़िया-से-बढ़िया प्रथा है। आज तो हम उसका ढांग ही देखते हैं; और अगर वर्ण-धर्मका क़ायम रखना हो, तो हिन्दुओंको चाहिये कि वर्ण-धर्मकी अस जूटनका नाश करके वे असकी पुरानी शानका फिरसे क़ायम करें।

ता० ८-११-२५

मेरा वर्णाश्रम-धर्म

[ब्राह्मण-अब्राह्मणोंके झगड़ोंको ध्यानमें रखकर गांधीजीने कड़िलोगमें जो भाषण दिया था, वही श्री० महादेवभाभीके साप्ताहिक पत्रमें लेकर नीचे दिया है ।]

मैं आपके अिन झगड़ोंका समझ ही नहीं सकता । पर अुन्हें समझे बिना मैं ज्ञानकी अेक बात आपसे कहूँ । ब्राह्मण तो त्याग और तपको समझने-वाले ही ठहरे । आपको जगहीं और ओहदोंके लिये लड़नेकी क्या जरूरत ! फिर आप अब्राह्मण अितने ज्यादा हैं कि सारे ब्राह्मण आपकी मुट्ठीमें समा जायँ । तो नाहक किसलिअे झगड़ा करते हैं ! आप वर्णाश्रम-धर्मके खिलाफ़ लड़ रहे हैं । लेकिन खबरदार, जाँ चीज़ हिन्दू-धर्मकी जड़ है, कहीं अुसीको आप खाद न डालें । वर्णाश्रमने आज जो राक्षसी रूप धर लिया है अुसका सामना आप डटकर कीजिये, अुसमें मैं आपके साथ ही खड़ा हूँ । लेकिन अगर आप ब्राह्मणोंकी बुराइयोंका सामना करनेके बदले ब्राह्मणधर्मकी जड़में चाँट करेंगे, तो आप हिन्दू नहीं रहेंगे, और अेक नया अद्वैतपन पैदा कर लेंगे । वर्णाश्रम-धर्मके मानी हैं भगवद्गीतामें बताया हुआ वर्णाश्रम-धर्म—समाजकी सेवाके अलग-अलग कामोंपर बनाये हुअे महा नियमोंका धर्म । अिस धर्मका खाने-पीने और शादी-व्याहके साथ कोअी संस्कार नहीं । मेरा वर्णाश्रम-धर्म मुझे पाक और साफ़ खुराक किसी भी धर्मनालेके और अद्वैतके भी हाथसे लेनेकी छुट्टी देता है । मेरा वर्णाश्रम-धर्म मुझे अपने आश्रममें अद्वैत भाअियोंके साथ अेक पंगतमें बैठकर खानेसे नहीं रोकता । मेरा वर्णाश्रम-धर्म मुझे अेक अद्वैत लड़कीका अपनी बेटी बनाकर रखनेसे मना नहीं करता । अगर अिस वर्णाश्रम-धर्मको ही आप अुखाड़ना चाहते हैं, तो आप हिन्दू-धर्मका अुखाड़ फेंकेंगे ।

[लेकिन जब बात अैसी है, तो फिर ब्राह्मण अपनेको अब्राह्मणोंसे अूँचा क्यों मानते हैं ? क्या आप मंज़ूर करते हैं कि ब्राह्मण सबसे अच्छे हैं ? अिमका जवाब गांधीजीने अब्राह्मण नेताओंके साथकी बातचीतमें और तंजोरकी सभामें विस्तारसे दिया ।]

अगर आपको यह भ्रम हो कि मेरे खयालमें मनुष्य कोभी खास अच्छाई लेकर पैदा होता है, तो आप उसे अपने दिलसे निकाल डालिये । मैं तो अद्वैत या वहदतके बड़े भारी असूलका माननेवाला हूँ, और अद्वैतका मेरा अर्थ ऊँच-नीचके फर्कको मंजूर करनेसे अिन्कार करता है । हर अिन्सान — चाहे वह हिन्दुस्तानमें पैदा हो या अिग्लैण्ड-अमेरिकामें — बराबरीके दरजेपर पैदा होता है । मैं अिस सिद्धान्तका कायल हूँ । अिसीलिअे हमपर राज करनेवाले अपनेका हमसे ऊँचा मनवानेकी जां कोशिश करतें हैं, उसके खिलाफ़ मैं लड़ रहा हूँ; दक्खिनी अफ्रीकामें ऊँच-नीचके भेदके खिलाफ़ मैं पग-पगपर लड़ा हूँ; और अिसी वजहसे मैं अपनेका भंगी, जुलाहा और मज़दूर कहलानेमें शान समझता हूँ । ब्राह्मण भी जब अपने ऊँचपनका घमण्ड करतें हैं, तो मैं उनसे भी लड़ता हूँ । मुझे तां यह नामर्दीकी निशानी लगती है कि आदमी आदमीको अपनेसे नीचा समझे । जां सबसे अच्छा होनेका दावा करतें हैं वे अपनी नालायक़ी माबित करतें हैं ।

और अिस सबके बावजूद वर्णाश्रम-धर्मके बारेमें मेरी श्रद्धा या अक्रीदत अटल है । अिसमें जो अटल नियम समाया है उसे कांअी झूठा कर ही नहीं सकता । अस नियमका मानकर अिन्ग्यान अपने खास गुणाका खोज निकालनेके लिअे तैयार होता है । वर्ण-धर्ममें नम्रता है । बराबरीका मतलब यह नहीं कि मनुष्य अलग-अलग गुण लेकर पैदा नहीं हो । जैसे आदमी अपने बाप-दादेकी शकल लेकर पैदा होता है, वैसे ही वह खास गुण लेकर भी जनमता है । अिस चीज़का मंजूर करके हम अपनी मर्यादाको मान लेतें हैं, और अिसकी वजहसे परमार्थ साधनेके लिअे सबको अेक-सा मौका मिलता है । यह सच्चा वर्णाश्रम धर्म है । यह वह वर्णाश्रम नहीं जां आज चल रहा है, बल्कि आप कह सकतें हैं कि यह मेरा अपना है । हाँ, आजकी अुपकी भद्दी शकलका विरोध आप भले ही कीजिये । पर जां मुझे मंजूर है वह आपका भी मंजूर हो, तो फिर मेरा आपसे कांअी झगड़ा नहीं रहता ।

यह नियम सारी दुनियाका मानना ही हांगा । जानमें या अनजानमें सभी धर्मोंवाले अिस नियमको मानतें हैं । और जबतक आप अिस नियमको अखण्ड रखकर अपनी लड़ाई लड़ेंगे तबतक जीत आपकी ही होगी ।

यानी अब्राह्मण ब्राह्मणको सुधारनेकी कोशिश भले करे, पर नाश करनेका प्रयत्न न करे। जो ब्राह्मण अपना धर्म भूलकर लालची बनता है वह ब्राह्मण मिट जाता है। पर जो ब्राह्मण कंजूस न बनकर सुदार रहता है, जो अपने ज्ञानका फ़ायदा दुनियाको पहुँचाता है, जो अपनी सुगंध फैलाता है और नम्रताकी मूर्ति बनकर रहता है, वह खुद अच्छाअधीका दावा न करे, तो भी मेरा माथा उसके आगे अपने आप झुक जायगा।”

ता० २५-९-१९३७

५

अँचे और नीचे

[निरुपग्रमे लोग गांधीजीके साथ खादी पैदा करनेकी चर्चा करनेके बदले गांधीजीके वर्ण-धर्म-मन्यवन्धी विचारों और अद्वैतधर्मके विचारोंके बारेमें ज्यादा मशगूल थे। नौजवानों ने जानना चाहते थे कि वर्ण-धर्मको कायम रखकर गांधीजी अँच-नीचेके भेद किन तरह दालना चाहते हैं। भ्रिम सुवालपर बहस करने-करते एक दिन साइ पड़ गयो। आखिर गांधीजीने मुझे समझाना छोड़कर मुझे दिलपर अमर करनेवाली कुछ बातें कहीं—

म० ह० दे०]

“मेरे आपका यह कैसे समझाओ कि अँच-नीचेका भेद नहीं रहता ! मेरे आपसे कहता हूँ कि जैसे सीता व्यभिचारिणीसे अँची नहीं थी, वैसे ब्राह्मण शूद्रसे अँचा नहीं। क्या आप मानते हैं कि सीता अँची नहीं थी ?”

“ना, नहीं मानते। अँचा भी कहीं हो सकता है !”

“हां सकता है। सीताके अपने मनमें अँचेपनका भाव नहीं था। सीताजीका अपनी पवित्रताका खयालतक नहीं था, घमण्ड तो होता ही कहीं से ! और घमण्डके बिना वे दूसरी स्त्रीको अपनेसे नीची कैसे समझती ! हिमालय वादलोंके साथ बातें करता है, मगर उसे अपनी अँचाअधीका सपनेमें भी खयाल नहीं। वह तो अपनी गहरी नम्रतामें ही मगन है। अगर उसे घमण्ड हो तो उसका चूरा-चूरा हो जाय। इसी तरह वर्णका अर्थ अँच-नीचे दिखलानेवाला माप हो जाय, तो वर्ण अंक गलेकी फाँसी ही बन जाय। मैक्समूलरने हिन्दू संस्कृतिको समझा था। उन्होंने लिखा है—

“हिन्दुस्तानन जीवनको कर्तव्यरूपमें ही देखा है, जब कि दूसरे देशोंने

कर्त्तव्य और भोगको मिला दिया है”। वर्णका मतलब है हरअेकको अपने-अपने बड़ोंकी तरफसे मिला हुआ जीवन-कर्त्तव्य या ज़िन्दगीका फ़र्ज़।

“पच्छिममें जब लोग आम जनताकी हालत सुधारनेकी बात करते हैं तो कहते हैं कि अिन लोगोंकी रहन-सहनका माप ऊँचा करो। हम अिस तरहकी बात नहीं कर सकते, क्योंकि जहाँ अपना-अपना माप अपने अन्दर ही मौजूद है वहाँ बाहरवाला कैसे उसे ऊँचा कर सकता है? हम तो हरअेकके लिये अपना फ़र्ज़ समझने और दिन-दिन प्रभुके नज़दीक पहुँचनेका मौक़ा बढ़ा सकते हैं।

“आप तो आज अिस सारे कर्त्तव्य-वृक्षकी जड़ अुखाड़ने बैठे हैं। मैं मानता हूँ कि अिस पेड़के कअी डाल-पत्ते सड़े हुअे हैं। अुन सबको हमें काट डालना चाहिये, पर जड़में कुल्हाड़ी चलाना तो हरगिज़ ज़रूरी नहीं। आप जड़में कुल्हाड़ी चलाने बैठे हैं, अिसलिये आप अनाड़ी माली हैं। आपको अपने बाग़की क्रदर नहीं। जिस पेड़ने आपको पोसा और छाया दी है, अुस पेड़को आप काटना चाहते हैं!

“लेकिन साथ ही यह समझ रखिये कि पेड़को काटनेकी आपकी कोशिश फ़िज़ूल है, क्योंकि जो सच्चे ब्राह्मण हैं वे तुम्हारी कुल्हाड़ीकी चांटें सहा करेंगे, और लहू झरते घावपर घाव सहकर खड़े रहेंगे। यह बात सच है कि आज अैसे सच्चे ब्राह्मण बहुत थोड़े हैं। क्षत्रिय भी कहाँ हैं? वैश्य और शूद्र भी कहाँ हैं? आप यह समझते हैं न कि शूद्र होनेमें कुछ विशेषता है? आज तो हम सब .गुलाम हैं। आज तो अेक डायर आकर हमें कैया देता है। अिसलिये बेहतर तो यह है कि हम सब .गुलामीमेंसे निकलकर अपने वर्ण-धर्मको समझने लगे। बहुतोंको वैश्य बनना पड़ेगा, क्योंकि आज वैश्यके पैर तले सब कुचले जा रहे हैं।

“जब मैं यह कहता हूँ कि हम ब्राह्मण बनें, तो अिसका यह मतलब नहीं कि जैसे हैं, अुससे ऊँचे बनें। बल्कि यह है कि हम ब्राह्मणके ऊँचे सेवा-धर्मके लायक़ बनें। आज तो हम अितने नीचे गिर गये हैं कि यह ब्राह्मण है और वह शूद्र है, यह ऊँचा है और वह नीचा है, अिस भाषामें ही हमारी गाड़ी फँस गअी है।”

वर्णाश्रम-धर्म*

१

[गांधीजीके दक्खिनके दौरैमें बहुत जगह अब्राह्मण मित्र गांधीजीसे मुलाकात करने आते और ब्राह्मण-अब्राह्मण सवालके अलग-अलग पद्लुआँपर चर्चा करते । बहुत बार बड़ी सवाल कभी जगह भूछे जाते, मगर जबाबका आधार हर जगह पृछनेवालेकी पात्रतापर रहता । अिन सब जवाबोंको अिकट्ठा करके मैंने सवाल-जवाबके अेक मिलनिलेमें बाँध दिया है । अिनमें तंजोर, चेटीनाड, विरुद्धनगर और तिनेवेलीको तैमाम बातचीतें आ जाती हैं । मदुराको बातचीतके वक्त मैं मौजूद न था, मगर मैं मानता हूँ कि अिन बातचीतोंके संग्रहमें वहाँ अिनकी चर्चा हुआ वे विषय भी आ जाते हैं । कडलोर, तंजोर और कोयिम्बटूरके मार्क्सजिनिक भाषणों या काम तक्ररीरोंमें गांधीजीने जो खयाल जाहिर किये अुन्हें मैं अिस पत्रमें दे चुका हूँ, अिसलिअे यहाँ नहीं दोहराता । अिमी तरह अिन तक्ररीरोंका मार मैं दे चुका हूँ — जैसे, तिरुपुर में हुआ अूचनीचपनके बारेकी बातचीत — अुन्हें भी मैंने छोड़ दिया है । म० ह० दे०]

सवाल — वर्ण-धर्मपर आप जो ज़ोर देते हैं अुसे हम समझ नहीं सकतें । क्या आप आज-कलकी जात-पाँतको ठीक समझते हैं ? वर्णकी आपकी व्याख्या क्या है ?

जवाब — वर्ण यानी अिन्सानके धन्धेके चुनावका पहलेसे किया हुआ फ़ैसला । आदमी अपने गुज़ारेके लिअे बापदादांका ही पेशा करे, अिसका नाम वर्ण-धर्म । हर लड़का सहज ही बापके 'वर्ण' (रंग)का अनुसरण करता है, या बापका धन्धा करना पसंद करता है । अिसलिअे वर्ण अेक तरहसे खानदानी विरासतका नियम है । वर्ण हिन्दुआँपर किसीकी लादी हुआ चीज़ नहीं, बल्कि अिन युजुर्गोंके सिरपर हिन्दू-जातिका भला करनेकी ज़िम्मेदारी थी अुन्होंने हिन्दुआँके लिअे यह क़ायदा खोज निकाला था । यह नियम अिन्सानकी कारीगरी नहीं, बल्कि कुदरतका अटल क़ानून है । न्यूटनके गुस्त्वाकर्षण या क़ानून-कशिशकी तरह जो शक्ति सदा रहती है और सृष्टि या मख़लूक़ातमें चलती है अुसीको अिन्सानकी बोलीमें वर्ण कह दिया है । जैसे न्यूटनकी खोजसे पहले भी गुस्त्वाकर्षणका

* 'ब्राह्मण और अब्राह्मण' शीर्षकने छपी प्रश्नोत्तरी या सवाल-जवाब ।

नियम मौजूद था, उसी तरह वर्ण-धर्म भी था । इस कुदरती कानूनको हूँद निकालना हिन्दुओंके लिये बड़ा था । पच्छिमके लोगोंने कुदरतके कुछ कानूनोंकी खोज और अस्तिमाल करके अपनी आर्थिक सम्पत्ति या दौलत खूब बढ़ा ली है । उसी तरह हिन्दू इस अच्छूक सामाजिक शक्तिकी खोज करके आध्यात्मिक क्षेत्र या रूहानी अलाक़ेमें जो कमाल हासिल कर सके हैं वह दुनियाकी किसी दूसरी जातिको नहीं मिला है ।

वर्णका जात-पाँतसे कोअी सम्बन्ध नहीं । जात-पाँत अछूतपनकी तरह हिन्दू-धर्मपर अुगा हुआ 'फ़ालतू अंग' है । आज जिन 'फ़ालतू अंगों' पर ज़ोर दिया जाता है वे कभी हिन्दू-धर्ममें न थे । पर क्या अँसे 'फ़ालतू अंग' आप भीसाअी धर्म या अिस्लाममें भी नहीं देखत ?

अिनका सामना आप जी भरकर कीजिये । वर्णका बनावटी मेस धरकर फिरनेवाले जात-पाँत रूपी राक्षसका आप ज़रूर नाश कीजिये । वर्णकी इस बिगड़ी हुअी शकलने ही हिन्दू-धर्मको और हिन्दुस्तानको नीचे गिराया है । हमारी आर्थिक या माली और आध्यात्मिक या रूहानी गिरावटका बड़ा सबब यही है कि हम वर्ण-धर्मका अमल करनेमें चूक गये । बेकारी और गरीबीका भी यह अेक कारण है । और अछूतपनके और उसी तरह बहुतेरे हिन्दुओंके धर्म छोड़नेके लिये भी यही ज़िम्मेदार है ।

लेकिन वर्ण-धर्मके मौजूदा राक्षसी स्वरूपका और राक्षसी रीति-रिवाजोंका विरोध करत हुअं हमें असली धर्मका ही विरोध न करना चाहिअं ।

स० — वर्ण कितने हैं ?

ज० — चार, — हालाँकि वर्ण-धर्मके स्वभावमें गिनतीकी अैसी कड़ाअी है नहीं । लगातार प्रयोग या आजमाअिअें और खोज करनेके बाद ऋषियोंको ये चतुर्विध भेद, या रोज़ी कमानेके चार तरीक़े मिले हैं ।

स० — तो क्या असका यह मतलब नहीं कि जितने धन्ये अुतने वर्ण ?

ज० — यह आवश्यक नहीं । समाजके तमाम धन्धोंको पढ़ने-पढ़ाने, बचाव करने, रुपया कमाने और सेवा करनेके चार ख़ाम हिस्सोंमें आनानीसे बाँटा जा सकता है । दुनियाके व्यवहारका धिचार करें तो सबसे बड़ा धन्धा माल पैदा करनेका है, जैमे सब आश्रमोंमें सबसे बड़ा गृहस्थ-आश्रम है । वैश्य सब वर्णोंका सहारा है । माल-मिल्किअत न हो तो

रक्षककी क्या जरूरत ? तीसरे वर्णके लिये ही पहले, दूसरे और चौथे वर्ण जरूरी हैं। पहला वर्ण हमेशा बहुत ही छोटा होगा, क्योंकि उसके लिये कठिन संयम जरूरी है। अच्छे बन्दोबस्तवाले या सुव्यवस्थित समाजमें दूसरा वर्ण भी छोटा ही होना चाहिये। यही बात चौथे वर्णकी भी समझिये।

स० — जो आदमी अपना पैदायशी धन्धा न करे उसे किस वर्णमें गिना जाय ?

ज० — हिन्दुओंके माननेके अनुसार तो उसका वर्ण जन्मसे ही गिना जायगा। लेकिन वर्णके मुताबिक न जीकर वह अपना नुकसान करता है और गिरी हुयी हालतमें पहुँचता है — पतित बनता है।

स० — मनुष्य शूद्र होकर ब्राह्मणका काम करे तो क्या वह पतित हो जाता है ?

ज० — शूद्रको ज्ञान पानेका अतना ही हक है जितना ब्राह्मणको। लेकिन वह अपना गुज़ारा लोगोंको लिखा-पढ़ाकर करनेकी कोशिश करे, तो वह जरूर वर्ण-धर्मसे गिर जायगा। पुराने ज़मानेमें अलग-अलग धन्धोंकी अपने आप बनी हुयी पंचायतें थीं, और अलग-अलग पेशेवाले हरअेक आदमीको पोसनेका पीढ़ी-दर-पीढ़ी रिवाज था। सौ बरस पहले बड़ोंका लड़का वकील बननेका लालच नहीं करता था। आज करता है, क्योंकि इस धन्धेमें उसे धन चुरानेका सबसे आसान रास्ता दिखायी देता है। वकील मानता है कि उसे अपना दिमाग खर्च करनेके बदले १५,००० रुपयेकी फ़ीस लेनी चाहिये, और हकीम साहब-जैसे डॉक्टर-बैद समझते हैं कि उन्हें अपनी डाक्टरी सलाहके लिये १,००० रुपये रोज़ लेने चाहिये।

स० — तो क्या मनुष्यको अपनी पसन्दका धन्धा करनेकी छूट नहीं ?

ज० — पर बाप-दादाका धन्धा ही उसकी पसंदका अकेला धन्धा होना चाहिये। यह पेशा पसन्द करनेमें कोई बुराई नहीं। अलटे इसमें कुलीनता है। आज तो हम सतरंगे आदमी देखते हैं। इसीसे समाजमें हिंसा फैली हुयी है और समाज तितर-बितर हो गया है। छिछली मिसालोंसे हमें अपने मनको भटकने न देना चाहिये। बापका धन्धा करनेवाले बड़ोंके लड़के हज़ारों होंगे, जबकि वकीलका धन्धा करनेवाले बड़ोंके छोकरे शायद सौ भी न हों। पुराने ज़मानेमें लोगोंको

दूसरेके धन्धेपर छापा मारने और धन बटोरनेका लालच न था। अुदाहरणके लिये सिसेरो* के समयमें वकीलका धन्धा मानभरा गिना जाता था। और कोसी बड़े दिमागवाला बड़्हायी रुपयेके लिये नहीं, बल्कि सेवाकी खातिर, वकील बने तो वह बिलकुल ठीक ही कहा जायगा। बादमें जिस धन्धेमें नाम और धनकी लालसा घुस गयी। बैद समाजकी सेवा करते और समाज जो देता उसीपर सबर करते। पर अब तो वे व्यापारी बन गये हैं और समाजके लिये भी खरनकाक हो बैठे हैं। बैद और वकीलके पेशाका हेतु या मकसद जब सिर्फ दूसरोंकी भलायी करना था तब अिन धन्धाका परोपकारी कहलाना वाजिब था।

स० — यह सब आदर्श स्थिति या नमूनेके हालातकी बात हुयी। आज तो सब रुपयेके धन्धेके पीछे पड़े हैं। अंसी हालतमें आप क्या करनेकी सलाह देते हैं ?

ज० — यह आपने ज़रा बड़ी बात कह दी। आजकल स्कूल-कॉलेजमें पढ़नेवाले लड़कोंकी गिनती कीजिये और यह हूँड़ निकालिये कि अिनमेंसे कितने फ्रीसदी विद्वत्ताका पेशा करते हैं। दिन-दहाड़े लूटना सबके लिये मुमकिन नहीं। आजकलकी हलचल तो दिन-दहाड़े लूटनेकी दीखती है। कितने लोग वकील और सरकारी नौकर बन सकते हैं ? धन कमानेमें लगनेका अधिकार तो वैद्योंका है। तिमपर भी जब अुनका पेशा दिन-दहाड़ेकी लूट बन जाता है तब वह तिरस्कारका पात्र हो जाता है। दुनियामें लाखों लखपती हां ही नहीं सकते।

स० — तामिलनाडुमें तो तमाम अब्राह्मण अैसा धन्धा करना चाहते हैं, जो अुन्हें अपने बाप-दादासे न मिला हो।

ज० — २ करोड़ २० लाख तामिलनाडुके रहनेवालोंकी तरफसे बोलनेका आपका अधिकार मैं नहीं मानता। मैं आपको अेक सूत्र देता हूँ — जिस जगह दूसरे सब न पहुँच सकें अुस जगह खुद पहुँचनेका लालच हमें न रखना चाहिये। अिस सूत्रपर अमल करना हो, तो वह मेरी व्याख्यावाले वर्ण-धर्मसे ही हो सकता है।

* मार्कन टूलियस सिसेरो (अी. पू. १०६-४३) रोमका मशहूर वक्ता या मुक़र्रर, फ़िलोसफ़र और राजनीतिज्ञ व क़ानून-पंडित था।

स० — आप यह कहते रहे हैं कि वर्ण-धर्म हमारी सांसारिक वासनाओं या दुनयावी इवाहिशोंपर अंकुश या क्राबू रखता है । यह कैसे ?

ज० — मैं अपने बापका धन्धा करूँ, तो उसे सीखनेके लिये मुझे स्कूल भी न जाना पड़े । यानी मेरी मानसिक शक्ति आध्यात्मिक अभ्यासके लिये और खोजके लिये खुली रहे, क्योंकि मुझे रुपयोंकी या गुज़ारेकी तो चिन्ता ही न रहे । सुख-सुविधा और सच्ची आध्यात्मिक तलाशके लिये वर्ण सबसे बढ़िया क्रिस्मका बीमा है । जब मैं अपनी शक्तियोंको दूसरे कामोंमें लगाता हूँ, तो मैं दुनियाके सुखकी — मृगजलकी — खातिर अपनी आत्माको पानेकी शक्तिको या अपनी आत्माको बेच डालता हूँ ।

स० — आप आध्यात्मिक कामोंके लिये शक्तिको खुला रखनेकी बात करते हैं । आज जो अपने बाप-दादोंका धन्धा करते हैं उनमें किसी तरहकी रूहानी तरक्की या आध्यात्मिक संस्कारिता तो दिखायी नहीं देती — उनका वर्ण ही उन्हें इसके लिये नालायक बना देता है ।

ज० — हम वर्णके टेढ़े-मेढ़े खयाल मनमें रखकर बातें करते हैं । जब वर्ण-धर्म सचमुच पाला जाता था तब आध्यात्मिक शिक्षाके लिये काफ़ी वक़्त रहता था । आज भी आप दूरके गाँवोंमें जायिये और देखिये कि शहरवालोंसे गाँवके लोगोंमें कितनी ज़्यादा आध्यात्मिक संस्कारिता है । शहरके लोग संयमको जानते ही नहीं ।

लेकिन आपने इस ज़मानेकी बुराई ठीक-ठीक बतायी है । दूसरे जिस हालतको न पा सकें उसे पानेकी कोशिश हम न करें । अगर गीता पढ़नेकी अच्छा रखनेवाला हरअक आदमी गीता न पढ़ सके, तो मैं गीता भी न पढ़ूँ । यही वजह है कि धन कमानेके लिये अंग्रेज़ी पढ़नेके विरोधमें मेरी अन्तरात्मा अुबल पड़ती है । हमें अपनी जिन्दगी फिरसे इस तरह बनानी है कि जिससे आज जो फ़ुरसत हममेंसे मुद्दिभर लोगोंको है वह लाखोंको भी मिल सके । यह हम वर्ण-धर्मको पाले बिना नहीं कर सकते ।

स० — हम आपसे बार-बार अंक ही सवाल पूछें तो आप हमें माफ़ कीजियेगा । हम अिसे ठीक-ठीक समझ लेना चाहते हैं । अलग-अलग वक्त्रतमें अलग-अलग धन्धा करनेवाले आदमीका कौनसा वर्ण माना जाय ?

ज० — जबतक वह बापका धन्धा करके गुज़र चलाता है तबतक उसके वर्णमें कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता । सेवाभावसे तो वह जो चाहे तो धन्धा करनेके लिये आज़ाद है । लेकिन जो आदमी धन कमानेके लिये बार-बार धन्धा बदलता है वह अधोगति पाता है और वर्ण-धर्मसे गिर जाता है ।

स० — किसी शुद्रमें ब्राह्मणके सब गुण होते हुअे भी क्या उसे ब्राह्मण नहीं कहा जा सकता ?

ज० — वह अिस जन्ममें ब्राह्मण नहीं कहलायेगा । और उसके लिये यह अच्छा है कि जिस वर्णमें वह पैदा नहीं हुआ उसे वह न अपनाये । यह सच्ची नम्रता या अिन्कसारीकी निशानी है ।

स० — आप मानते हैं कि वर्णके गुण विरासतमें ही मिलते हैं और अपनी कोशिशसे हासिल नहीं किये जा सकते ?

ज० — किये जा सकते हैं । विरासतमें मिले हुअे गुण मज़बूत किये जा सकते हैं, और नये बढ़ाये जा सकते हैं । मगर हमें धन कमानेके लिये नये रास्ते खोजनेकी ज़रूरत नहीं, खोजना बेजा है । हमारे बाप-दादोंकी तरफ़से जो पेशे हमें विरासत या अुत्तराधिकारमें मिले हों वे जबतक शुद्र हों तबतक हमें अुन्हींमें संतोष मानना चाहिये ।

स० — क्या आप नहीं देखते कि किसी आदमीमें उसके खानदानके गुणोंसे अलग क्रिस्मके गुण होते हैं ?

ज० — यह मुश्किल सवाल है । अिनसानकी तमाम पिछली बातोंका हमें अिल्म नहीं होता । लेकिन मैंने आपको जो वर्ण-धर्म समझाया है उसे समझनेके लिये आपको और मुझे अिस सवालकी गहराअीमें जानेकी ज़रूरत नहीं । मेरे पिता व्यापारी हों और मुझमें लड़वैयेके गुण दीखें तो मैं सिपाहीके तौरपर देशकी सेवा मुफ़्त भले ही करूँ, पर मुझे अपना गुज़र तो व्यापारसे ही करके सन्तोष मानना चाहिये ।

स० — आज जो जाति-भेद दिखायी देते हैं वे अक वर्णके दूसरे वर्णके साथ रोटी-बेटी-व्यवहार-सम्बन्धी बन्दिशोंमें ही खतम हो जाते हैं । क्या वर्णकी रक्षाके लिये अिन बन्धनोंको क्रायम रखना जरूरी है ?

ज० — नहीं, जरूरी भी नहीं । वर्णकी शुद्ध-से-शुद्ध हालतमें किसी भी तरहकी बन्दिश क्रायम नहीं रह सकती ।

स० — ये बन्धन दूर किये जा सकते हैं ?

ज० — किये जा सकते हैं । दूसरे वर्णोंमें व्याहनेसे भी वर्ण तो क्रायम रहता ही है ।

स० — तो अिसमें स्त्रीका वर्ण कौनसा माना जायगा ?

ज० — जो पतिका वर्ण वही पत्नीका भी ।

स० — आपने वर्ण-धर्मका जो असूल वयान किया वह हमारे शास्त्रोंमें मिलता है या आपका अपना है ?

ज० — यह मेरा खुदका नहीं । मुझे यह भगवद्गीतासे मिला है ।

स० — मनुस्मृतिमें यह सिद्धान्त जिस तरह बताया गया है क्या आप उसे मानते हैं ?

ज० — सिद्धान्त तो असुमें है ही । लेकिन व्यवहारमें असुके जो अुपयोग बताये गये हैं वे पूरी तरह मेरे गले नहीं अुतरते । असि ग्रंथके कुछ हिस्से बहुत अेतराजके काबिल हैं । मैं अुम्मीद रखता हूँ कि वे बादमें जोड़े गये होंगे ।

स० — क्या मनुस्मृतिमें आपको नहीं लगता कि बहुतसी अन्याय-पूर्ण बातें हैं ?

ज० — हाँ, स्त्रियों और नीची कहलानेवाली 'जातियों'के साथ असुमें बहुत अन्याय है । शास्त्रके नामपर चलनेवाली बहुतसी बातें शास्त्र नहीं होतीं । असिलिये शास्त्रकी किताबें पढ़ते वक्त बहुत सावधानी रखनी चाहिये ।

स० — मगर अाप तो भगवद्गीताके मुताबिक चलते हैं । असुमें कहा है कि वर्ण गुण और कर्मसे तय होता है । तब आप यह जन्मकी बात कहाँसे लाये ?

ज० — मैं भगवद्गीताके अनुसार चलता हूँ, क्योंकि यही धर्मकी एक ऐसी किताब है जिसमें मुझे दोष निकालने जैसा कुछ नहीं मिला। यह सिर्फ़ असूल पेश करती है, और उसपर अमल करनेका तरीका हूँद निकालनेका काम हमें सौंप देती है। गीता यह ज़रूर कहती है कि वर्ण गुण और कर्मके अनुसार हांता है, मगर गुण और कर्म जन्मसे विरासतमें मिलते हैं। भगवान कृष्णने कहा है कि चारों वर्ण मैंने पैदा किये हैं — चातुर्वर्ण्य मया सृष्टम्। इसमेंसे मैंने 'जन्मतः' का अर्थ निकाला है। वर्ण-धर्म पैदायशी न हो तो उसके कोअी माने नहीं।

स० — पर वर्णमें अँचपन तो बिलकुल ही नहीं आता है न?

ज० — नहीं, ज़रा भी नहीं। गो कि मैं यह ज़रूर कहूँगा कि ब्राह्मण-वर्ण दूसरे वर्णोंकी आखिरी हद है, जैसे सिर शरीरकी आखिरी हद है। इसका अर्थ सेवाकी बढ़ी-चढ़ी शक्ति है, बढ़ा-चढ़ा दरजा नहीं। बढ़ा-चढ़ा दरजा अख़्तियार करते ही वह पैरों तले कुचलन लयक बन जाता है।

स० — आपने 'कुरळ' का नाम सुना होगा। इस तामिल ग्रंथके लेखक कहते हैं कि कोअी भी वर्ण जन्मसे नहीं। वे कहते हैं कि पैदा होते वक़्त तो सारे जीव समान दरजेके होते हैं।

ज० — अन्होंने जो यह कहा है वह मौजूदा ज़्यादतियोंके जवाबके तौरपर कहा है। किसी भी वर्णने अँचपनका दावा किया होगा तो उसके खिलाफ़ अन्हें अपनी आवाज़ अुठानी पड़ी होगी। मगर इससे जन्मतः वर्णकी कोअी काट नहीं होती। यह तो अँच-नीचपर कुल्हाड़ा चलानेकी एक सुधारककी कोशिश है।

स० — क्या आप यह महसूस नहीं करते कि आजकलकी रुढ़ियाँ या पुराने रिवाज अितने सड़े हुए हैं कि अन्हें जड़से अुखाड़ फेंकना और फिर अेक-दोसे शुरू करना ही सबसे अच्छा रास्ता है?

ज० — बशर्ते कि हम विधाता हों। क़लमके अेक अिशारेसे हम हिन्दू-स्वभावको बदल नहीं सकते। इस नियमका अमल करनेकी रीति हम हूँद सकते हैं, अिसे मिटानेकी नहीं।

स० — शास्त्र बनानेवालोंने नयी स्मृतियाँ रचीं, तो आप क्यों नहीं रचते?

ज० — हाँ, अगर मैं नयी दुनिया बना सकूँ तो ! तब तो मेरी हालत विश्वामित्रसे भी बुरी हो जाय । और, विश्वामित्र तो मुझसे कहीं बड़े थे !

स० — जबतक आप वर्णको नहीं मिटाते तबतक अछूतपन नहीं मिटेगा ।

ज० — मैं यह नहीं मानता । फिर भी छुआछूतको मिटानेमें वर्णाश्रम मिट जाय तो मैं अके आँसू भी नहीं बहाऊँगा । मगर मेरी व्याख्या या तारीफ़के वर्णका छुआछूतके साथ क्या ताल्लुक है ?

स० — मगर सुधारके विरोधी अपनी हिमायतमें आपका सबूत जो पेश करते हैं !

ज० — यह हालत तो हर सुधारके तत्कालीनमें लिखी है । स्वार्थी पक्ष उसकी बातोंका बेजा अस्तमाल करेंगे ही । मगर आप जानते हैं कि उनमेंसे कुछ यह चाहते हैं कि मैं हिन्दू-धर्म छोड़ दूँ ! दूसरे कुछ ऐसे हैं कि उनका बस चले तो वे मुझे हिन्दू-धर्मसे निकाल दें । मैं वर्ण-धर्मका बचाव करनेके लिये कहीं गया नहीं, पर छुआछूत मिटानेके लिये तो मैं वायकम तक गया था । खादी-प्रचार, हिन्दू-मुस्लिम अकता और छुआछूतका नाश, स्वराजके अति तीन खंभोंका कांग्रेसने जो प्रस्ताव पास किया था, उसे मैंने बनाया था । लेकिन वर्णाश्रम-धर्मकी संस्थापनाको मैंने कभी स्वराजका चौथा खंभा नहीं कहा । असलिये आप मुझपर यह अलज्जाम नहीं लगा सकते कि मैंने वर्णाश्रम-धर्मपर ग़लत ज़ोर दिया ।

स० — क्या आप जानते हैं कि आपके बहुतसे अनुयायी या पैरो आपके मक़सदको बिगड़े हुअे रूपमें फैलाते हैं ?

ज० — जानता क्यों नहीं ! मैं जानता हूँ कि मेरे बहुतसे अनुयायी सिर्फ़ नामके हैं ।

स० — बौद्ध-धर्मको हिन्दुस्तानसे निकाल बाहर किया गया, क्योंकि उस धर्ममें ब्राह्मणोंका बहुत ज़ोर था । उसी तरह अगर हिन्दू-धर्मसे ब्राह्मणोंका स्वार्थ न सधा, तो वे हिन्दू-धर्मको भी निकाल बाहर करेंगे ।

ज० — तो हिम्मत करके देखें ! पर मुझे तो यकीन है कि बौद्ध-धर्म हिन्दुस्तानसे गया नहीं है । बुद्धकी ज़िन्दगीके रहस्य या राज़को सबसे ज्यादा अपनानेवाला देश तो हिन्दुस्तान ही है । बुद्धके जीवन-रहस्यको

बौद्ध-धर्मसे अलग चीज़ समझना चाहिये, जैसे अश्वि ख्रिस्तका जीवन-रहस्य असाधनी धर्मसे अलग चीज़ है । उन्होंने बुद्धके खास उपदेश या नसीहतको अपनी ज़िन्दगीमें उतार लिया था, इसीलिये वे बौद्ध-धर्मको देश-निकाला दे सके थे ।

स० — ब्राह्मणोंके जिस तबक्केने बौद्ध-धर्मका सबसे अच्छा हिस्सा अपना लिया था उसी तबक्केने अछूतोंको मन्दिरोंमें जानेसे रोककर और उनपर बेरहमीभरी हकावटें डालकर भेदे-से-भेदे गुनाह, अमृतसरके जुल्मोंसे भी भेदे गुनाह, किये हैं ।

ज० — आपका कहना कुछ हदतक सच है । लेकिन आप यह मानकर गलती करते हैं कि ब्राह्मण ही उसके दोषी हैं । उसके लिये सारा हिन्दू-धर्म ज़िम्मेवार है । जब वर्ण-धर्मका रूप बिगड़ा तो उसमेंसे अछूतपन पैदा हुआ । यह कोअी जान-बूझकर की हुअी दुष्टता नहीं थी, मगर इसका नतीजा बहुत ही दुखदायी निकला है ।

स० — मगर जबतक आप 'वर्णाश्रम-धर्म' लफ़्ज़का अस्तित्वमाल करते रहेंगे, तबतक उसके साथ आजके बुरे खयाल जुड़े ही रहेंगे ।

ज० — तो इसका सार यह निकला कि बुरे खयाल निकाल डालो और शुद्ध वर्ण-धर्मको फिर ज़िन्दा करो ।

स० — अभी तो चारों तरफ़ घोटाला है । उसमेंसे हम किस तरह निकलें ?

ज० — मुझे यही कहना है कि बुनियादको न अखाड़ो, जाँ है उसे शुद्ध करनेकी कोशिश करो । उसके बजाय आप तो एक ऐसा नया धर्म फैलानेकी खटपटमें पड़े हैं जिसे स्वीकार करनेको कोअी तैयार नहीं । ब्राह्मण-धर्म ही तो हिन्दू-धर्म है । यानी हिन्दू-धर्मके लिये हमारे पास एक ही शब्द था — 'ब्राह्मण-धर्म', यानी ब्रह्म-विद्या या अल्मे हक़ । इसे मिटानेकी कांशिश करके आप हिन्दू-धर्मको मिटानेकी कोशिश करते हैं । ब्राह्मण जब आपके हक़ोंपर हमला करें तो आप उनसे पग-पगपर लड़ लेना और उन्हें सुधारनेकी कांशिश करना । मगर हरएक ब्राह्मणको भद्दी गालियाँ देनेसे कोअी फ़ायदा नहीं । ब्राह्मण ब्राह्मणमें भी क़र्क़ होता है । एक ब्राह्मण क़द्र सुधारक होता है, दूसरा सुधारका विरोधी होता

है । आपको सुधारक तबकेके ब्राह्मणोंमेंसे सबसे अच्छे आदमियोंको अपनी तरफ़ लेना चाहिये, और उनको मददसे अपने कार्यक्रम या प्रोग्रामके रचनात्मक या तामीरी हिस्सेको पूरा करना चाहिये । इससे ब्राह्मण और अब्राह्मण दोनोंको मुक्ति या नजात मिलेगी ।

आप सुधारके विरोधियोंसे ज़रूर लड़िये और उनसे कहिये — ‘अगर आप लोग धन और टाट-वाटके पीछे पड़ेंगे, विद्वान् नहीं बनेंगे और हमें सच्चा धर्म नहीं सिखायेंगे तो हम आपको ब्राह्मण नहीं कहेंगे ।’ तब ब्राह्मण आपकी ज़रा भी मुखान्त्रित नहीं कर सकेंगे । सुधार करानेके लिये आप सख्त हलचल कीजिये, और जहाँ किसी भी अब्राह्मणके लिये कोअी रुकावट हो उन स्कूलों और मन्दिरोंको छाड़ दीजिये । इस बातका आग्रह रखिये कि मन्दिरोंके पुजारी नेकचरन, विद्वान् या आलिम और धनके लालचसे दूर हों । अगर पुराने मन्दिर अछूतोंको घुसने देनेसे अिन्कार करें तो आप नये मन्दिर बनाअिये

अब सवाल रहा दूसरे वर्णोंके साथ खानेका । इसके लिये मैं किसीसे लड़ने नहीं जाऊँगा । लेकिन जहाँ खानेके मौक़ेपर अैसा कोअी भेद माना जाय वहाँ उस खानेमें शरीक होनेसे ज़रूर वचूँगा ।

फिर मैं अछूतोंके साथ भाअीचारा बढाऊँगा, उनके साथ अपने सगे भाअी जैसा बरताव करूँगा, और तमाम छोटी-छोटी जातियों और उपजातियोंको तोड़ डालूँगा, और चुनौचे जब मैं अपने लड़केका व्याह करूँगा तो कोशिश करके दूसरी उपजातियोंमेंसे लड़की हूँद लूँगा । आज हम भई रुढ़ियोंसे अितने जकड़े हुअे हैं कि आप न यहाँसे गुजरातमें जा बसनेको लड़की देंगे और न गुजरातकी लड़की तामिलनाडुमें बसनेको लेंगे ।

असके बाद मैं अछूतोंका धार्मिक शिक्षा या मज़हबी तालीमके तौरपर हिन्दू-धर्मके और नीति-धर्मके अुसूत्रोंकी मामूली जानकारी कराऊँगा । आज तो वे बेचारे महज़ जानवरोंकी-सी ज़िन्दगी बिता रहे हैं । मैं अुन्हें निषिद्ध या ममनूअ-खुराक छोड़ने और पाक व साफ़ जीवन बितानेको समझाऊँगा । आप अिन बातोंको आसानीसे बढा सकेंगे और अिनमेंसे अंक बढा रचनात्मक कार्यक्रम पैदा कर सकेंगे ।

स० — हम देखते हैं कि आपको हिन्दू-धर्मपर बड़ी भारी थढ़ाया अतक्राद है । क्या आप हमें यह समझायेगे कि हिन्दू-धर्मने हमारे लिये क्या किया है, हिन्दू-धर्मका हमपर क्या कर्ज है ? क्या उसने हमें बेहूदा वहाँ और रूढ़ियोंकी विरासत नहीं दी ?

ज० — मैं मानता था कि यह बात तो समझी जा चुकी होगी । वर्णाश्रम-धर्म ही दुनियाके कदमोंमें रखी हुअी हिन्दू-धर्मकी अक बेमिसाल भेंट है । हिन्दू-धर्मने हमें मायासे यानी मुसीबतसे बचा लिया है । अगर हिन्दू-धर्म मुझे बचाने न दौड़ा होता, तो मेरे लिये खुदकुशीका ही अक रास्ता बचा था । मैं हिन्दू रहा हूँ, क्योंकि हिन्दू-धर्म अक ऐसी चीज़ है जो अपनी खुशबू सब जगह फैलाकर दुनियाको अन्सानके बसने लायक बनाती है । हिन्दू-धर्मसे ही बौद्ध-धर्मका जन्म हुआ है । आज हम जो देखते हैं वह हिन्दू-धर्मका शुद्ध स्वरूप नहीं होता, बल्कि अक्सर उसकी विगड़ी हुअी शकल होती है । नहीं तो, मुझे उसकी तरफ़दारीमें बोलनेकी ज़रूरत न रहती, वह खुद ही अपनी बकालत कर लेता — जैसे, अगर मैं पूरी तरह शुद्ध होऊँ, तो मुझे आपके आगे बोलनेकी ज़रूरत न रहे । अश्वर अपनी ज़बानसे नहीं बोलता । और अन्सान जितना अश्वरके नज़दीक आता है उतना ही वह अश्वरान बनता है । हिन्दू-धर्म मुझे सिखाता है कि मेरा शरीर अन्दर रहनेवाली आत्माकी शक्तको रोकनेवाला बन्धन है ।

जैसे पन्थिमके लोगोंने दुनियावी चीज़ोंके बारेमें अद्भुत खोजें की हैं, वैसे ही हिन्दू-धर्मने धर्मके, मनोवृत्तिके और आत्माके क्षेत्रमें अिससे भी ज़्यादा अद्भुत खोज की है । लेकिन अिन भव्य और सूक्ष्म, आलीशान और बारीक, खोजोंको देखनेवाली आँख हमारे पास नहीं है । पन्थिमी विज्ञानने जो आर्थिक तरक्की की है उससे हमारी आँखें चौंधिया जाती हैं । मुझे उस तरक्कीका मोह नहीं । सही नज़रसे देखनेपर यही लगता है कि मानो सयानेपनके भण्डार अश्वरने ही हिन्दुस्तानको अिस तरहकी तरक्कीसे बचा लिया है, जिससे जड़वाद या मादियातके हमलेको सहनेका अश्वरका दिया हुआ काम यह देश पूरा कर सके । हिन्दू-धर्ममें ऐसा कुल सत्व या मादा है जिसने उसे आजतक ज़िन्दा रखा है ।

वह बाबिलोन, सीरिया, अीरान और मिस्रके सुधारोंके पतनका साक्षी है। दुनियामें चारों तरफ़ नज़र डालकर देखिये। रोम कहाँ है ? ग्रीस कहाँ हैं ? गिबनका अटली — या रोम कहिये, क्योंकि रोम ही अटली था — आज आपको कहीं भी ढूँढ़े मिल सकता है ? ग्रीसमें जाजिये। ग्रीसकी सारी दुनियामें मशहूर संस्कृति या तहज़ीब कहाँ है ? फिर हिन्दुस्तानकी तरफ़ आँखें मोड़िये। यहाँके पुराने-से-पुराने ग्रंथ कांअी जाँच कर लें और फिर आसपास नज़र डाले तो अुसे बरबस यह कहना ही होगा — ‘हाँ, यहाँ पुराना हिन्दुस्तान अभी ज़िन्दा दिखाअी देता है।’ सच है कि किसी-किसी जगह धूरे बन गये हैं, लेकिन अुन धूरोंके नीचे निहायत क़ीमती रत्न या जवाहर दबे पड़े हैं। और हिन्दू-धर्म समयके अितने फेर-बदलके सामने जो टिका हुआ है अुसका सबब यह है कि अुसने माली तरक्क़ीके आदर्श या मय्यारका नहीं, बल्कि पारमार्थिक प्रगति या रूहानी तरक्क़ीके आदर्शका सेवन किया है।

अुसने दुनियाका जां कअी भेंटें दी हैं, अुनमें गूंगी जीवमृष्टिके साथ मनुष्यकी अेकताका खयाल अंक लासानी चीज़ है। मेरी समझसे गायकी पूजा अंक आर्लाशान खयाल है, और अुसे व्यापक या वसीअ किया जा सकता है। धर्म-परिवर्तन या मज़हब बदलनेके आजकलके पागलपनसे हिन्दू-धर्म जां बचा रहा है वह भी मेरे खयालसे क़ीमती चीज़ है। हिन्दू-धर्मका प्रचारकी ज़रूरत नहीं। वह कहता है — ‘शुद्ध जीवन बिताआ।’ मेरा और आपका फ़ज़ सिर्फ़ पाक ज़िन्दगी गुज़ारना है। अुसका असर ज़मानेपर रह जायगा। फिर यह सोचो कि हिन्दू-धर्मने रामानुज, चैतन्य, रामकृष्ण जैसे कितने बड़े आदमी दुनियाको दिये हैं। हिन्दू-धर्मपर आजके समयमें जिन पुरुषोंने अपनी छाप डाली है अुनके तो नाम भी मैं यहाँ नहीं देता। हिन्दू-धर्म मरता हुआ या मरा हुआ धर्म नहीं।

फिर चार आश्रमोंकी भेंटका विचार कीजिये। यह भी अंक अद्वितीय या बेमिसाल भेंट है। अिसकी जोड़ सारी दुनियामें और कहीं नहीं मिल सकती। कैथलिक धर्ममें ब्रह्मचारियोंसे मिलते-जुलते कुँयारोंका फ़िरका ज़रूर है, पर वह अुस धर्मकी संस्था नहीं। हिन्दुस्तानमें तो हर लड़केको अिस पहले आश्रमसे गुज़रना पड़ता था। यह कितनी भव्य कल्पना थी ! आज

हमारी आँखें मैली हैं, विचार उससे भी ज्यादा मैले हैं, और शरीर सबसे ज्यादा मैला है, क्योंकि हम हिन्दू-धर्मसे अिन्कार कर रहे हैं ।

अभीतक एक बात मैंने नहीं कही — मैक्समूलरने चालीस साल पहले कहा था कि युरोप अब समझता जा रहा है कि पुनर्जन्म या तनासुख कोओी वाद या बहसकी चीज़ नहीं, बल्कि अंक सचाओी है । यह भी पूरी तरह हिन्दू-धर्मकी ही देन है ।

आज वर्णाश्रम-धर्मको और हिन्दू-धर्मको उसके पुजारी गलत रूपमें दिखाकर उससे अिनकार कर रहे हैं । असका अुपाय अुसे मिटाना नहीं, बल्कि अुसे शुद्ध करना है । हम अपने जीवनमें सच्ची हिन्दू-वृत्तिको सजीवन करें और फिर पूछें कि अससे अन्तरात्माको सन्तोष होता है या नहीं ।

ता० १८-१२-१७

७

‘ब्राह्मण और अब्राहमण’

यह सुखीं या शीर्षक लगाकर कारवारसे श्री० नाडकर्णी लिखते हैं —

“ ब्राह्मण-अब्राहमणके सवालपर आपके तमाम खयालातको, खासकर दक्खिनके पिछले दौरैमें कही गओी आपकी बातोंको, में लगातार दिलचस्पीके साथ पढ़ता रहा हूँ । असके सिवाय मैंने अपने तौरपर भी अस सवालका अध्ययन या मुताला किया है । असलिअे अस सवालकी आपने जाँ छानबीन की है असपर अपने मनकी दाँ शंकायें और मुद्दिकलें में आपके सामने पेश करनेकी हिम्मत करता हूँ ।

आप ब्राह्मण-अब्राहमणके सवालको वर्णाश्रम-धर्मके सिलसिलेमें पैदा हुआ ज़िन्दा सवाल मानते हैं असमें में आपसे सहमत हूँ । सिर्फ़ आपका ‘वर्णाश्रम’ के बदले ‘वर्ण’ शब्द काममें लेना चाहिअे, क्योंकि असमें ‘आश्रम’ का तो सवाल ही नहीं । लेकिन अस विषयकी चर्चामें अखबारों और व्याख्यानोंमें ‘वर्ण’ के साथ ‘आश्रम’ को जोड़ देनेका रिवाज

अतने लम्बे समयसे चला आ रहा है कि अब हमें इसमें फेरबदल करनेकी ज़रूरत नहीं जान पड़ती ।

अस बारमें (ता० २२ और २९ सितम्बरके) ‘ यंग अण्डिया ’ में छपे हुअे आपके भाषण लँ । अस विषयपर आखिरी भाषण या तकरीर आपने तंजोरमें की है । दुःखके साथ कहना चाहिये कि असमें आप ‘ सच्चे वर्णाश्रम धर्म ’ का वयान करनेकी भारी लालच देकर अेकदम रुक गयें हैं और आपने कहा है : ‘ सुननेवालोंके अितने भारी समाजके सामने मुझे अस विषयमें गहरा अुतरना अुचित नहीं । ’ मैं चाहता हूँ कि अब मेरे अस पत्रसे आपको यह वयान ‘ यंग अण्डिया ’ के पढ़नेवालोंके सामने रखनेकी सूझे । अिरा व्याख्यानमें ‘ असली ’ ‘ आदर्श ’ वर्णाश्रम धर्मके बारेमें बोलते हुअे आपने कहा है : ‘ सच पूछा जाय तो दुनियामें किसी भी जगह मनुष्य-समाज अस नियमका सामना नहीं कर सका है । ’ अिसी तरह कडलोरमें आपने कहा है : ‘ पश्चिमी कौमाँको और अिस्लामका भी अनजानमें अस धर्मपर चलना पड़ता है ।

आपके ये वचन छुटपुट हाँते तां जात-गँत (या वर्ण) के किसी भी समझदार विरोधीको — कितने ही कट्टर विरोधीको भी — ‘ वर्ण ’ नाम रहंत हुअे भी असके अस अर्थपर आपत्ति करनेका कारण नहीं था, क्योंकि आपके अिन वचनोंमें आपने वर्णका अर्थ अितना ही किया है : दूसरे देशों और दूसरे धर्माँमें जो कायदा कुदरती तौरपर मौजूद है और जिसके कारण मेहनतका बँटवारा पीड़ी दर पीड़ीकी चीज़ हो जाता है, वही कायदा वर्ण है । आपकी वर्ण-व्यवस्थाका मतलब अितना ही होता, तो हिन्दुस्तानमें ब्राह्मण-अब्राहमणका सवाल या छूत अछूतका घोटाला पैदा ही न हुआ होता । लेकिन वर्ण-व्यवस्था आप कहते हैं वैसी नहीं है । जो चीज वर्ण-व्यवस्थाके नामसे करीब करीब हमेशा पहचानी गयी है, वह तो बनावटी तौरपर कायम रखा हुआ और निहायत कड़ा सामाजिक भेद है । असका दूसरा नाम ‘ जाति ’ है । जातियाँ जैसी ‘ अंक समय ’ थीं, वैसी चार हों या आजकी तरह चालीस हजार हों, असलमें तो अेक ही हैं । अधिकार और बन्धनके बँटवारेकी, सिर्फ जन्मको ध्यानमें रखकर की हुअी, यह व्यवस्था है ।

अिसकी मिसाल देखनी हो तो अयोध्याके राजा रामचन्द्रके दिन याद करें । आप जानते ही होंगे कि पुराने जमानेके अिस पूजा करने लायक क्षत्रिय राजाने अपनी प्रजाके अेक दुःखी ब्राह्मणकी फरियाद सुनकर अपनी ही प्रजाके अेक शूद्रका सिर काट दिया था; — सिर्फ अितनी सी बातपर कि अुसने चौथे आश्रमके लायक तप करके, जिसकी शूद्रोंके लिअे मनाअी थी, ब्राह्मणोंकी ' आध्यात्मिक ' ठेकेदारीपर ' हमला ' किया था । रामायणकी अुजली कहानीमें अिस काले धब्बेको आप रूपक कहकर अलग निकालकर नहीं रख सकते । यह कहनेसे काम नहीं चलेगा कि यह किस्सा असली रामायणमें क्षेपक या बादमें मिलाया हुआ होगा; क्योंकि यह किस्सा रामायणमें कअी सदियोंसे है और लोग अिसे बिना तकरार किये मानते आये हैं । अिसके लिअे कोअी वहाने या बचाव ढूँढे बिना आपको साफ तौरपर कबूल करना चाहिये कि यह किस्सा वर्णाश्रमपर — जिसकी आप हिमायत करते हैं अुस 'असली' 'आदर्श' वर्णाश्रमपर भी — अेक धब्बा है । अब, महात्माजी, आप और मैं सिर्फ वैश्य और ब्राह्मण न रहकर (क्योंकि मैं जन्मसे ब्राह्मण हूँ) सच्चे हिन्दू बनना चाहते हों, तो हमें रामके वक्तके अिस शूद्र मुनि शंबूकको धार्मिक आज्ञादीका पुरानेसे पुराना रक्षक और हिन्दुस्तानके, शायद सारी दुनियाके, अितिहासमें लिखा हुआ पहला शहीद मानकर अुसकी यादको पूजना चाहिये । महात्माजी, क्या आप अिसमें मेरा साथ देनेको तैयार हैं ? अैसा करनेसे ही आजकी ब्राह्मण विरोधी हलचलोंका जहर निकलेगा और अिस पुराने झगड़ेकी राखमेंसे अेक-रूप और अेक-दिल हिन्दू धर्म पैदा होगा । मैं कहता हूँ कि हिन्दू धर्मको अब भी जीना और फलना-फूलना हो, तो शंबूकको न्याय मिलना चाहिये ।

वर्ण हिन्दू समाजमें चल रहा अेक कुदरती कानून ही है, अैसा बयान करनेके बाद आप फौरन ही तंजोरकी तकरीरमें कहते हैं : ' मैं मानता हूँ कि जैसे हर आदमीको अपने बापदादेकी शकल विरासतमें मिलती है, वैसे ही अुसे बापदादेके गुण और स्वभाव भी विरासतमें मिलते हैं । यह बात मान लेनेमें अिन्सानकी शक्तिका बचाव है । अैसा साफ स्वीकार करके अुसीके मुताबिक अमल करें, तो हमारी आर्थिक वासनाओं या लालच पर ठीक काबू रहे और हमारी शक्ति आध्यात्मिक खोज और आध्यात्मिक

तरक्कीका दायरा बढ़ानेके लिये खुली हो जाय ।’ ऐसा हो तो सब गांधियोंको गांधीपन और रामनाम अनि दोसे ही चिपटा रहना चाहिये, और गृहस्थकी जिन्दगी खतम करनेके बाद ठीक अश्रममें बाजाबता चौथे आश्रममें दाखिल न हों, तब तक देशके सामाजिक या राजनीतिक सुधारमें कभी सिर न मारना चाहिये । नहीं तो वैश्यका राजनीतिमें पड़ना ब्राह्मणों और क्षत्रियोंके आध्यात्मिक बाढ़पर हमला करने-जैसा होगा । लेकिन क्या यह नियम भलाभी करनेवाला साबित होगा ? और फिर पीढ़ी दर पीढ़ीवाले नियमको आप कौनसा स्थान देते हैं ?

हम इस बारेमें जरा विचार करेंगे तो दियकी तरह दिखायी देगा कि पीढ़ी दर पीढ़ीके कानूनके साथ धर्मके नामपर अत्याचारी बन्धन जोड़ कर हमने इस नियमपर ज़रूरतसे ज्यादा जोर दिया है । इसकी गवाही इतिहास देता है कि पिछले समयमें इस नियमने हिन्दुओंको बड़ी आनबानकी घड़ियोंमें धोखा दिया है । अकबरकी हुकूमतके शुरूमें हिन्दु-स्तानमें फिरसे हिन्दू राज्य कायम करनेका हेतूका बड़ा साहसी और लगभग सफल होनेपर आया हुआ प्रयत्न बेकार गया । इसका सबब, जहाँ तक मुझे याद है, यह था कि दुश्मन उसकी फौजको यह समझा सका कि हेतू राजपूत खानदानका न होकर ‘ हलका ’ है; इसलिये उसे छोड़ दो ! महाराष्ट्रमें — महान् शिवाजी और पहले बाजीरावकी धरतीमें — अब्राह्मण मराठा राजकुटुम्बोंको कितने ही ब्राह्मण नेताओंने क्षत्रिय माननेसे अिन्कार कर दिया । यानी यह कि वैदिक मंत्रोंके साथ धर्म-विधि करनेका क्षत्रियका हक अिन्हें न दिया गया । इसीमेंसे ब्राह्मण-अब्राह्मणके झगड़ेकी शुरुआत हुअी — यह सोचते हुअे शर्म आती है । आपने जैसा तंजोरमें कहा वैसा भले ही कहिये कि ‘ आज वर्णाश्रमका जैसा अर्थ और अमल होता है, वह तो असलकी बुरी तरह बिगड़ी हुअी शकल है । ’

अब हम मनुस्मृति तक भी पीछे जाँय, तो हमें जान पड़ेगा कि उस ज़मानेमें भी अलग अलग वर्णोंमें शादी ब्याह होनेसे और दूसरे कारणोंसे चारके चालीस वर्ण तो हो ही चुके थे । वर्णोंमें आपसमें खने, पीने और शादी-ब्याहकी कभी मनाअी नहीं हुअी थी; फिर भी उस समय अेक

वर्णका दूसरे वर्णके साथ शादी-ब्याह अितना कम होता था, या अितना कम पसन्द किया जाता था कि अैसे विवाहोंसे होनेवाली औलादको अपनी नअी जातियाँ बनानी पड़ती थीं । (अिसपरसे यह सवाल अुठता है कि मिसालके तौरपर आजकलके कायस्थोंको आप ' असली चार 'में से कौनसे वर्णमें रखेंगे ?) और अुस जमानेमें भी चौथे वर्णपर बड़ी सख्ती थी । वे कभी वेदके मंत्र गाते सुन लिये जाते, तो अुनके कानमें अुबलता हुआ सीसा भर दिया जाता था ! अिन ' असली ' वर्णाश्रमके अंगोंको भी सत्य और अर्दिसाके खिलाफ कहकर आप नहीं स्वीकारेंगे । पर कुछ भी हो, अिसमें शक नहीं कि आजके आपके वर्णाश्रमकी, जिसे आप ' असलकी बुरी तरह विगड़ी हुअी शकल ' कहतें हैं, यह पहली हालत है ।

यानी, वर्ण चार हों या (आजकी तरह) चालीस हजार, अिनमें अेक तत्त्व समान है । वह यह है कि धन्धाने अिस वंशपरम्पराको कायम रखना चाहिये । ब्राह्मणका लड़का चाहे अकुशल याज्ञिक निकले, लेकिन अुसके अुम्दा कारीगर बननेकी आशा होने पर फिर भी अुसे कारीगर न बनते याज्ञिक ही बनना चाहिये । नहीं तो अुसे जात बाहर रहना पड़े । अिससे अुलटे, किसी अंब्राह्मणमें कारीगरके बजाय याज्ञिक होनेकी ओर विशेष रुचि दिखाअी देती हो, फिर भी अुसे याज्ञिककी तरह समाज-सेवा करनेकी खाहिश कभी नहीं रखनी चाहिये । हिन्दुओंके सिवा दूसरी जातियोंमें तो याज्ञिकका लड़का अपनी बुद्धिके मुआफिक अैसे अेक या अनेक मार्गोंसे समाज-सेवा कर सकता है, किसी तरह भला-बुरा याज्ञिक ही होनेका बन्धन अुसके सिर नहीं है । अिससे अुलटे, सैनिक या कारीगरका लड़का धर्म-पण्डित होकर भी चमक सकता है । हकीकत यह है कि अितिहासके कअी आला दीमाग लोग हीन कुलमें पैदा हुअे और आला दीमागवाले माता-पिताओंके बालक ज्यादातर साधारण दर्जेके निकले । जहाँ सैनिकों गणित शास्त्रियोंका जन्म दिया, वहाँ गणित-शास्त्रियोंने अुपन्यासकार तथा अैसी ही कमजोर बुद्धिवाली औलाद पैदा की है । अिस तरह वंश-परम्पराके नियममें सब कुछ नहीं आ जाता । वंशपरम्पराके नियमके सिवा ' परिस्थति ' और दूसरी बहुत-सी बातें मिलकर आदमीका निर्माण करती हैं तथा समाजमें अुसकी जगह और समाज-सेवाका मार्ग ठहराती हैं ।

अस तरह ब्राह्मण-अब्राह्मणके सवालपर मैं अस नतीजेपर पहुँचा हूँ : जैसे आप जन्मसे वैश्य होनेके कारण हिन्दुस्तानकी खराब माली हालतके लिअे वैश्योंको जिम्मेदार समझते हैं, वैसे ही जन्मसे ब्राह्मण होनेके कारण मुझे यह कहनेमें जरा भी हिचकिचाहट नहीं होती कि सारे हिन्दुस्तानकी आध्यात्मिक या रूहानी और आर्थिक या माली दोनों तरहकी गुलामीके लिअे ब्राह्मण लोग ही जवाबदेह हैं । जिन्हें बहुत मिला हुआ था, उनसे बहुत पानेकी आशा भी रखी थी । मगर अफसोस, छोटी नजर और स्वार्थ बुद्धिमें पैदा हुआ कंजूस धर्मान्धतानें आड़े आकर उन्हें अपने जीवनका अच्छेसे अच्छा भाग समाजके पैरोपर रखनेसे रोक दिया । नतीजा यह हुआ कि ब्राह्मणोंके धर्मको माननेवालोंके साथ साथ ब्राह्मण भी गहरी अधोगतिमें पड़े हैं । ”

ता० २०-११-२७



वर्णाश्रम

पिछले अंरुमें ब्राह्मण-अब्राह्मणके सवालपर श्री नाडकर्णीका पत्र छापा था । तामिलनाडुके पिछले दौरैमें मैंने अपने भाषणोंमें वर्णाश्रमके बारेमें अपने खयाल जाहिर किये थे और उनमेंसे थोड़ा बहुत भाग ‘यंग अिण्डिया’ में भी उस वक्त दिया गया था । अब अुन्हीं विचारोंको अधिक विस्तारसे समझानेका श्री नाडकर्णीका निमंत्रण मैं मंजूर करता हूँ ।

सवालका मतलब साफ करनेके लिअे अेक बात कह दूँ । अेक शूद्रने संन्यासी बननेकी धृष्टता या गुस्ताखी की और अिसीपर रामने अुसका सिर काट डाला । अस मशहूर कहानीको मैं अस सवालमें नहीं मिला देना चाहता । मैं शास्त्रोंका लफ्जी मानी नहीं करता और न अुन्हें अितिहास ही मानता हूँ । शंबूकका सिर

अुड़ा देनेकी बात रामके सारे चरित्रसे मेल नहीं खाती । और अलग अलग रामायणोंमें कुछ भी कहा हो, मैं तो मानता हूँ कि मेरा राम शूद्रका तो क्या, किसी औरका भी सिर नहीं काट सकता । शंबूककी कहानीपरसे अगर कुछ साबित होता है तो अितना ही कि अिस कहानीके समयमें जो शूद्र खास विधियाँ करते थे, वे मौतकी सजाके लायक समझे जाते थे । हम यह नहीं जानते कि यहाँ शूद्रका मतलब क्या है । अिस सारी कथाको मैंने रूपकके तौरपर घटाभी हुआ भी सुनी है । मगर अिससे अिस सफाअीमें फर्क नहीं पड़ता कि किसी समय हिन्दू धर्मके विकास क्रममें शूद्रोंपर कुछ बेजा बंदिशें लगाअी गअी थीं । सिर्फ शंबूकका सिर काटनेकी जो बात कही जाती है, उसके लिअे प्रायश्चित्त करनेमें श्री नाडकर्णीका साथ देनेकी मुझे जरूरत नहीं; क्योंकि मैं यह मानता ही नहीं कि अिस नामके किसी अैतिहासिक व्यक्तिका सिर राम नामके किसी अैतिहासिक व्यक्तिके हाथों काटा गया था । हिन्दू धर्मके निचले वर्गोंपर—खासकर अछूत कहलानेवाले वर्गोंपर गुजरे हुअे जुल्मोंके लिअे तो अेक हिन्दूके नाते मैं अपने जीवनके हर पल प्रायश्चित्त कर रहा हूँ । मेरी राय यह है कि वर्णाश्रमके सवालकी धर्मकी रूसे की गअी छानबीनमें शंबूक-जैसी मिसालोंके लिअे स्थान नहीं ।

अिसलिअे, मेरा अितना ही कहनेका अिरादा है कि जिसे मैं वर्णाश्रम मानता हूँ, वह क्या चीज है । वर्णाश्रमके जो मानी मैं लगाता हूँ, वे हिन्दू धर्ममेंसे नहीं निकल सकते, यह कोअी साबित करके बता दे तो मुझे वर्ण-व्यवस्थासे अिनकार करनेमें जरा भी संकोच न होगा । जैसा श्री नाडकर्णी कहते हैं, वर्ण और आश्रम दो जुदा शब्द हैं । जहाँ हमारी आश्रम व्यवस्था अिन्सानको जिन्दगीका मक़सद पूरा करनेके ज्यादा लायक बनाती है, वहाँ अितना वर्ण-धर्म तो उसके लिअे लाज़िमी और अनिवार्य ही है । वर्ण-धर्म कहता है कि मनुष्यको अपने गुजरके लिअे धर्मकी रूसे वाजिव अपने बापदादेका धन्धा ही करना चाहिये । मैं मानता हूँ कि यह कानून सब जगहके लिअे है और सारे मानव कुटुम्ब या अिन्सानी कुनबेपर राज करता है । अिसे तोड़नेसे हमें गम्भीर परिणामके जो अहम नतीजे भोगने पड़े हैं, वही सबको भोगने पड़ते

हैं। लेकिन अनजानमें ही सही, ज्यादातर मनुष्य अपने पुरखोंका ही पेशा करते हैं। इस कानूनकी खोज करके और समझके साथ इसका अमल करके हिन्दू धर्मने मानव-जातिकी भारी सेवा की है। अगर इन्सान और हैवानके जीवनमें अितना ही फर्क हो कि मनुष्यका फर्ज अीश्वरको पहचानना है, तो इसमेंसे यह नतीजा निकलता है कि उसे इस बातकी खोजमें ही अपनी जिन्दगीका बड़ा हिस्सा न लगा देना चाहिये कि अपने गुज़ारेके लिये कौनसा धन्धा ज़्यादा अनुकूल या माफिक होगा। अुन्टे, उसे यह समझना चाहिये कि बापका पेशा करना ही उसके लिये अुत्तम मार्ग है और फिर अपने बच्चे हुअे समय और बुद्धिको मानव-जातिके लिये अीश्वरका बताया हुआ फर्ज अदा करने लायक बननेमें लगाना चाहिये।

अिस तरह, श्री नाडकर्णीकी बताअी हुआ मुश्किल यहाँ खड़ी नहीं होती, क्योंकि अपनी खुशीसे सेवाके अनेक काम करने और उसकी कावलियत या योग्यता पैदा करनेकी किसीके लिये मनाअी है ही नहीं। अिसलिये ब्राह्मणके घर जन्मे हुअे श्री नाडकर्णी और वैश्यके घर पैदा हुआ मैं ज़रूरतके वक्त तनग्राह लिये वगैर राष्ट्रीय-स्वयंसेवकका, नर्सका और भंगीका काम ज़रूर कर सकते हैं। अिससे वर्ण-धर्म नहीं टूटता; पर अिस धर्मके अनुसार अुन्हें ब्राह्मणके नांते अपनी रोजीके लिये तो पढोसियोंकी दयाका ही आसरा रखना चाहिये और मुझे वैश्य होनेके कारण गांधीके धन्धेसे ही गुजर चलाना चाहिये। हरअेकको कोअी भी अुपयोगी सेवाका काम करनेकी छूट है, मगर अिसके लिये बदला माँगनेका अधिकार नहीं।

वर्ण-धर्मकी अिस कल्पनामें कोअी अेक दूसरेसे अ़ूँचा नहीं। हरअेक पेशा जहाँ तक वह अपनी या समाजकी नीतिके खिलाफ न हो वहाँ तक अेक-सा और अिज्जतका है। समाजमें जो दरजा ब्राह्मणका है, वही भंगीका है। क्या मैक्समूलरने नहीं कहा कि हिन्दू धर्मने जीवनको दूसरे सब धर्मोंसे अधिक कर्तव्यरूप माना है ?

हाँ, अितना ज़रूर मानना पड़ेगा कि हिन्दू धर्मके विकास क्रममें किसी समय अिसमें गंदे रिवाज घुस गये और अ़ूँच-नीचकी सड़ाँधने पैठकर अुसे बिगाड़ दिया। लेकिन अ़ूँच-नीचका खयाल हिन्दू धर्ममें

सब जगह फैली हुआ यज्ञ, त्याग या कुर्बानीकी भावनासे बिल्कुल बेमेल मालूम होता है। जिन्दगीके जिस निजाम या व्यवस्थाकी बुनियाद अहिंसापर खड़ी है और हर जानदारके लिये शुद्ध प्रेम जिसकी असली शकल है, उसमें किसी भी तबकेको दूसरेसे ऊँचा माननेकी गुंजायश ही कहाँ हो सकती है ?

असि वर्ण-धर्मके खिलाफ कोसी यह न कहे कि इसीके सबवसे जीवन नीरस हो जाता है और सारी अच्छ आकांक्षाओं या हौसले मारे जाते हैं। मेरी राय यह है कि वर्ण-धर्मके कारण ही जिन्दगी सबके लिये मुमकिन होती है। अन्सानकी बड़ीसे बड़ी स्वादिष्टके लायक अंक ही चीज—आत्मप्राप्ति या हकको पाना—है, और उसे उस मंजिलपर पहुँचानेवाला भी वर्ण-धर्म ही है। आज तो सब कुदरतसे ही पलभरमें मिटनेवाले रुपये पैसके कामके पीछे विचार और पुरुषार्थ दौड़ाते देखते हैं और इसमें अितन फँस जाते हैं कि जो एक मात्र जरूरी चीज है, उसे भूल जाते हैं।

मुझे कोसी यह कहे कि वर्णका जो मतलब मैंने बताया है, उसकी ताओद करनेवाली कोसी बात हिन्दू धर्मके आचारग्रंथ स्मृतियोंमें नहीं है, तो उसे मेरा जवाब यह है कि जीवनके बुनियादी अटल सूत्रोंपर रची हुई आचारकी स्मृतियोंमें हमारे नये नये तज्ज्ञों और नयी नयी देखभालके मुताबिक समय समयपर फेरबदल हुआ ही करते हैं। स्मृतियोंमेंसे उमे कितने ही नियम बताये जा सकते हैं, जो लाजिमी तो क्या अमल करने लायक भी नहीं मालूम होते। जिन्दगीके अटल असूल तो अने-गने ही होते हैं और वे सब धर्मोंमें अक-मे हैं। जुदा जुदा धर्म अिनपर जुदा जुदा तरहसे अमल करते हैं। और कोसी भी धर्म अभी तक सारे मुमकिन तरीकांसे अिनपर अमल नहीं कर सका। जैसे जैसे विचार फैलते जायें और नयी नयी हकीकतोंकी जानकारी बढ़ती जाय, वैसे वैसे अिन असूलोंका विस्तार भी होना ही चाहिये। मैं मानता हूँ कि अिन्सानका अनुभव बढ़ता है, उसीके साथ शब्दोंके अर्थका भी विकास होता है। यज्ञ, सत्य, अहिंसा, वर्णाश्रम वगैरा लफ्जोंके पिछले जमानेमें जो अर्थ थे, उनसे आज कितने ही व्यापक और समृद्ध हो गये हैं। यह कायदा

‘वर्ण’ शब्दपर लागू करें, तो जिसके चालू अर्थको पकड़े रहना बेजा है, बेवकूफी है। अगर हम यह मानते हों कि जिस जमानेकी ज़रूरतोंके साथ या हमारी नैतिक भावनाके साथ जिसका मेल नहीं बैठता, तो जिसके पीछे पड़े रहना आत्महत्या या खुदकुशी है।

जिस तरह वर्णका विचार करें, तो उसका आजकलकी जात-पाँतसे कोई ताल्लुक नहीं। इसी तरह दूसरे वर्णके साथ खानेपीने और शादी-ब्याहकी मनाअी भी वर्ण-धर्म माननेका ज़रूरी अंग नहीं। हो सकता है कि ये बातें वर्ण-व्यवस्थाके बचावके लिये जारी की गयी हों। संयमकी बुनियादपर खड़ी की गयी किसी भी जीवन-व्यवस्था या जिन्दगीकी तरतीबमें मनमाने व्याहपर रोक लगाना ज़रूरी है। मनमाने खानपानकी रोक सफाअीके खयालसे या रहन-सहनके भेदसे पैदा होती है। लेकिन पहले जिस रोककी परवाह न करनेवाला किसी भी तरहकी समाज या कानूनकी सज़ाके लायक या वर्णके बाहर निकालनेके लायक नहीं समझा जाता था, और न आज भी समझा जाना चाहिये।

असलमें वर्ण चार थे। यह बैठवारा समझकर किया हुआ और समझमें आने लायक था। लेकिन वर्णकी संख्या या तादाद वर्ण-धर्मका कोई अंग नहीं था। ज़िमे, दरजीको लुहार न बनना चाहिये, हालाँकि दोनों वैश्य माने जाते हों और माने जाने चाहियें।

तामिलनाडुमें सबसे जोरदार अुत्र तो यह सुना कि वर्ण-व्यवस्थाका मेरा अर्थ देखते हुअे वह कितनी भी अच्छी और निर्दोष जान पड़ती हो, लेकिन उसके साथ जो बदवू लगी हुअी है, उसकी वजहसे या तो उसे कोई नया नाम देना चाहिये या उसको बिलकुल मिटा देना चाहिये। यह आपत्ति करनेवालोंको डर यह था कि मेरे अर्थकी तरफ तो ध्यान दिया नहीं जायगा और वर्णके नामपर आज हिन्दू धर्ममें जो बेहूदा भेदभाव और ज्यादतियाँ हो रही हैं, उनकी हिमायतमें मेरे कहनेको सबूतके तौरपर पेश किया जायगा। जिन लोगोंने यह भी कहा कि मामूली लोगोंकी समझमें जात-पाँत और वर्णके मानी अेक ही हैं; जिसके सिवा वर्णका संयम तो कहीं नहीं पाळा जाता, और जगह जगह वर्णका जुलम ही देखनेमें आता है।

असमें शक नहीं कि जिन सब आपत्तियोंमें बहुत सार है। मगर जिस तरहके अजुग तो अक समयकी अच्छी मगर आजकी सङ्गी हुअी बहुतेरी व्यवस्थाओंके खिलाफ अठाये जा सकते हैं। सुधारकका काम यह है कि वह अस व्यवस्थाकी ही जाँच करे और असकी खराबियाँ दूर होने जैसी हों तो उसे सुधारनेमें ही लग जाय। मगर वर्ण सिर्फ अन्सानका कायम किया हुआ बन्दोबस्त नहीं, बल्कि असका ढूँढा हुआ कानून है। असलिअे असका नाश नहीं किया जा सकता। असका छिपा हुआ मेद और असकी ताकतें ढूँढनी चाहियें और समाजकी भलाअीके लिअे अुनका अिस्तेमाल होना चाहिये। हमने देख लिया कि वर्ण-धर्म या वर्ण-व्यवस्था खुद बुरी नहीं; बुराअी तो असके साथ लगी हुअी अँच-नीचकी भावनामें है।

अक सवाल यह भी अठता है कि आजकल जब चारों वर्ण या अुपवर्ण सब अंकुश तोड़ रहे हैं, अपना आर्थिक फायदा बढ़ानेके लिअे जा-बेजा तमाम तरीके काममें ले रहे हैं और जब कितने ही वर्ग दूसरोंसे अँचा होनेका दावा करते हैं और दूसरे अिनका वाजिब विरोध करते हैं, तब वर्ण-धर्म पर अमल किस तरह किया जाय? हम ध्यान न देंगे तो भी यह कानून खुद अपना काम किये बिना नहीं रहेगा। लेकिन वह सजाके तौरपर होगा। अगर बरवादीसे बचना हो, तो हमें भी असके वश होना ही पड़ेगा। और आज यह देखते हुअे, कि हम अपने पर भी यही हैवानी कानून लागू करनेमें मशगूल हैं कि 'सबसे लायक यानी शरीरसे सबसे समर्थ ही बचेगा', यह मानना अच्छा है कि हम सब अेक ही वर्णके यानी शूद्र हैं; फिर भले ही कुछ लोग शिक्षक हों, कुछ सिपाही हों या दूसरे कुछ व्यापारमें लगे हों। मुझे याद है कि १९१५ में नेलोरकी सामाजिक परिषदके सभापतिने यह सुझाया था कि चूँकि पहले सब ब्राह्मण थे, असलिअे सबको ब्राह्मण मानना चाहिये और दूसरे वर्ण मिटा देने चाहियें। यह सुझाव मुझे अस वक्त भी अजीब लगा था और आज भी अजीब लगता है। ये सुधार अगर शान्तिसे करने हों, तो अँचे कहलानेवाले वर्णोंको नीचे अुतरना पड़ेगा। जिनको सदियोंसे अपनेको समाजमें नीचेसे नीचा माननेकी तालीम मिली है, वे अेकाअेक अँचे कहलानेवाले वर्णोंकी तरह साधन-सम्पन्न या मालदार नहीं हो सकते। असलिअे अगर

वे सत्ता लेना चाहें, तो सिर्फ खून बहाकर या दूसरे शब्दोंमें कहें तो समाजका संहार या नाश करके ही ले सकते हैं ।

समाजको फिरसे बनानेकी अपनी योजनामें मैंने 'अछूत' जातियोंका जिक्र नहीं किया, क्योंकि वर्ण-धर्ममें या हिन्दू धर्ममें, मैं अछूतपनकी गुंजायश नहीं देखता । ये वर्ग दूसरे सबके साथ शूद्रोंकी जमातमें मिल जायेंगे । जिस शूद्र वर्गमेंसे पवित्र या पाक होकर धीरे धीरे दूसरे तीन वर्ण पैदा होंगे । जिनके पेशे अलग अलग होते हुअे भी जिनका दरजा बराबर होगा । ब्राह्मण बहुत थोड़े होंगे । क्षत्रियोंका वर्ग जिससे भी थोड़ा होगा और वे आजकलकी तरह भाड़ेके सिपाही या बेलगाम राजा न होंगे, बल्कि कौमके सच्चे रक्षक और हवालदार होंगे और राष्ट्रकी सेवामें जान देनेवाले होंगे । सबसे छोटा वर्ग शूद्रोंका होगा, क्योंकि अच्छे बन्दोबस्तवाले समाजमें अन्धमान भाभी-बहनोंसे कमसे कम मजदूरी कराभी जायगी । बड़ीसे बड़ी तादाद वैश्योंकी होगी । जिस वर्णमें तमाम धन्धे --- किसान, व्यापारी, कारीगर वगैरा सब — शामिल होंगे । यह योजना खयाली पुलाव पकाने जैसी लग सकती है । लेकिन आज जिस समाजको मैं तितर-बितर होता देख रहा हूँ, उसके बेलगाम और मनमाने व्यवहारके माफिक जीनेके बजाय मैं अपने खयालके जिस मनोराज्यमें विचरना ज्यादा पसन्द करता हूँ । किसी शास्त्रका मनो-राज्य समाजके हाथों मंजूर न हो, तो भी उसे उसमें रहने और विचरनेकी छूट है । हरेक सुधारकी शुरुआत व्यक्तिसे ही हुअी है । जिस सुधारमें सुधारकके प्राण हों और जिसे शूरीर आत्माका सहारा हो, उसे सुधारकका समाज स्वीकारे बिना नहीं रहता ।

ता. २७-११-२७

वर्ण और कौम

अेक विद्यार्थी अपना नाम देकर लिखता है :

“ मैं जानता हूँ कि हिन्दुस्तानके कौमी सवाल या साम्प्रदायिक समस्याके बारेमें आप दिन-रात तेजीसे विचार कर रहे हैं और आपने जाहिर किया है कि जिन दो शर्तोंपर आप अगले गोलमेज परिषदमें भाग ले सकते हैं उनमेंसे अेक शर्त अिस सवालका हल है। आज छोटी जातियों या अल्पमतवाली कौमोंके सवालका हल बहुत कुछ उनके नेताओंपर निर्भर है। मगर तमाम कौमी झगड़ोंकी जड़ अुखाड़ फेंकनेके लिये ये लोग शायद किसी काम-चलाअु समझौतेपर पहुँच भी जायँ, तो अुससे काम पूरा नहीं होता।

सारे कौमी भेदकी जड़ काटनेके लिये बहुत ज्यादा मजबूत सामाजिक मेलजोल अनिवार्य या लाजिमी है। आज तो हर कौमका सामाजिक जीवन दूसरा सभी जातियों और कौमोंकी जिन्दगीके साथ विलकुल अछूत-जैसा होता है। हिन्दू-मुसलमानकी ही बात लीजिये। हिन्दुओंके बड़े त्योहारोंपर मुसलमान भाओ हिन्दुओंकी आदभगत नहीं करते। अिसी तरह मुसलमान त्योहारोंकी बात है। अिससे जो कौमी अलगावकी भावना पैदा होती है, वह देशको भलाअीके लिये बहुत ही नुकसान देह है।

दूसरा जो अपाय कितने ही लोगोंने मुझाया है, वह है अलग अलग जातियोंके बीच ब्याह-शादीका सम्बन्ध। जहा तक मैं आपकी मान्यताओं या विश्वासोंको जानता हूँ, आप जातपाँतके बारेमें मजबूत विचार रखते हैं; यानी अिसका यह मतलब हुआ कि आपकी रायमें तो अेक जातिका दूसरी जातिमें ब्याह होना लम्बे समय तक हिन्दुस्तानियोंको नापसन्द ही रहेगा। जब तक जिन दो कौमोंके बीच कुछ भी अलगाव रहेगा, तब तक कौमी भेदभावकी पूरी तरह मिटा देना बहुत ही मुश्किल काम है।

‘नये हिन्दुस्तान’ के धर्मराज्यमें अलग अलग जातियोंमें आपके खयालसे किस तरहके आपसो ताल्लुकात रहेंगे ? सामाजिक व्यवहारमें क्या वे आजकी तरह ही अलग अलग रहेंगी ? मैं मानता हूँ कि अिस सवालके हल्पर हिन्दुस्तानी राष्ट्रकी आयन्दा भलाअीका दारमदार है।

अेक बात और। अगर हम जातपाँतको मानें तो अछूत कहानेवाले लोगोंकी हालत बहुत नाजुक हो जाती है। हमें अछूतोंको अूना अुठाना है,

तो हम जातपाँतके बन्धन चालू रख ही नहीं सकते। जाति और धर्मका भेद, जो अलगावका वायुमण्डल पैदा करता है, दुनिया भरके साथ भाभीचारा बढ़ानेके खयालसे शाप-जैसा है। जातपाँतकी व्यवस्था अँच-नीचकी झूठी भावना पैदा करती है। इसमेंसे बुरे नतीजे निकलते हैं। तब यह कैसे बताया जा सकता है कि जातपाँतके अिन पुराने बन्धनोंके बारेमें श्रद्धा या अेतकाद ठीक है।

ये सवाल मोग दिमागमें महीनोंसे घूम रहे हैं, और मैं आपका दृष्टिबिन्दु समझ नहीं सका। अिन प्रश्नोंका हल निकालनेके लिये मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप मेरी मुश्किल दूर करें।

मैं अलाहाबाद युनिवर्सिटीमें बी० ए० क्लासका विद्यार्थी हूँ। किसी भी तरह हिन्दू मुसलमानोंमें भाभीचारेकी भावना पैदा करनेकी मैं बेचैन हूँ। लेकिन मेरे सामने मुश्किलें बहुत हैं। अिनमेंसे अेक जातपाँतके बारेमें है, जो मैंने आपके सामने पेश की है। दूसरी मांस खानेकी बाबत है। मुसलमानोंके अिस खानेमें मांस परांसा जाय, अुसमें मैं कैसे शरीक हो सकता हूँ? मुझे रास्ता बतानेवाला आपसे अच्छा कोअी नहीं। अिसीलिये अिस पत्रके जरिये आपके पास हाजिर होता हूँ।”

यह कहना पूरी तरह सच नहीं कि हिन्दू मुसलमान अेक दूसरेके त्याहारके दिन आपसमें आवभगत नहीं करते। लेकिन यह ज़रूर चाहूँगा कि अैसी आवभगत बहुत ज्यादा मौकोंपर और काफी अधिक मात्रामें हो।

जातपाँतके बारेमें मैंने बहुत बार कहा है कि आजके मानीमें मैं जातपाँतको नहीं मानता। यह ‘फालतू अंग’ है और तरक्कीके रास्तेमें रुकावट-जैसा है। अिसी तरह आदमी आदमीके बीच अँच-नीचका भेद भी मैं नहीं मानता। हम सब पूरी तरह बराबरके हैं। लेकिन बराबरी आत्माकी है, शरीरकी नहीं। अिसलिये यह मानसिक अवस्था या दिमागी हालतकी बात है। बराबरीका विचार करनेकी और अुसे जोर देकर जाहिर करनेकी ज़रूरत पड़ती है, क्योंकि दुनियामें अँच-नीचके भारी भेद दिखायी देते हैं। अिस बाहरसे दीखनेवाले अँच-नीचपनमेंसे हमें बराबरी पैदा करनी है। कोअी भी मनुष्य अपनेको दूसरेसे अँचा मानता है, तो वह अीश्वर और मनुष्य दोनोंके सामने पाप करता है। अिस तरह जातपाँत अिस हद तक दरजेका फर्क जाहिर करती है, अुस हद तक बुरी चीज है।

लेकिन वर्णको मैं अवश्य मानता हूँ। वर्णकी रचना पीढ़ी दर पीढ़ीके धन्धोंकी बुनियादपर हुआ है। अिन्सानके चार धन्धे सार्वत्रिक या सब जगह चलनेवाले हैं—दान देना, दुखीको बचाना, खेती-व्यापार और शरीरकी मेहनतसे सेवा। अिन्हींको चलानेके लिये चार वर्ण बनाये गये हैं। ये धन्धे सारी मानव-जातिके लिये समान हैं, पर हिन्दू धर्मने अुन्हें जीवनधर्म करार देकर अुनका अिस्तमाल समाजके सम्बन्धों और आचार-व्यवहारको नियममें लानेके लिये किया है। गुरुत्वाकर्षण या जमीनकी कशिशके कानूनको हम जानें या न जानें, अुसका अंसर तो हम सभीपर हांता है। लेकिन वैज्ञानिकों या सायंसदोंअोंने अुसके भीतरसे ऐसी बातें निकाली हैं, जो दुनियाको चौंकानेवाली हैं। अिसी तरह हिन्दू धर्मने वर्ण-धर्मकी तलाश करके और अुसका प्रयोग करके दुनियाको चौंकाया है। जब हिन्दू जहालतके शिकार हो गये, तब वर्णके बेजा अिस्तमालके कारण अनगिनत जानियाँ बनीं और रोटी-बेटी व्यवहारके बेज़रूरी और हानिकारक बन्धन पैदा हो गये। वर्ण-धर्मका अिन पाबन्दियोंके साथ कोअी नाता नहीं। अलग अलग वर्णके लोग भीतर भीतर रोटी-बेटी व्यवहार रख सकते हैं। अरित्र और तन्दुरुस्तीकी खातिर ये बन्धन जरूरी हो सकते हैं। लेकिन जो ब्राह्मण शूद्रकी लड़कीसे या शूद्र ब्राह्मणकी लड़कीसे ब्याह करता है, वह वर्ण-धर्मको नहीं मिटाता।

अपने धर्मके बाहर शादी करना दूसरा ही सनाल है। अिसमें भी जब तक स्त्री पुरुष दोनोंको अपना अपना धर्म पालनेकी छूट हो, तब तक अिस तरहके विवाह सम्बन्धमें नैतिक दृष्टि या अखलाकी नजरसे मुझे कोअी बाधा नहीं दीखती। लेकिन मैं यह नहीं मानता कि ऐसी शादियोंसे शान्ति कायम होगी। शान्ति कायम हो जानेके बाद जरूर ऐसे ब्याह-शादी हों। जब तक हिन्दू-मुसलमानोंके दिल खिंचे हुअे हैं, तब तक हिन्दू-मुसलमानोंकी ब्याह-शादियोंकी हिमायत करनेकी कोशिशका नतीजा सिवा आपत्तिके मुझे कुल नहीं दीखता। अैसे अिवके-दुक्के सम्बन्ध मुखदायी साबित हो सकते हैं। लेकिन अैसे अपवाद अुन्हें आम बनानेकी हिमायतके कारण नहीं समझे जा सकते। हिन्दू-मुसलमानोंके बीच थाली भेजनेका व्यवहार तो अभी भी काफ़ी है।

लेकिन इससे भी शान्ति तो बढ़ी ही नहीं, । मेरा पक्का विश्वास है कि रॉटी-बेटी व्यवहारवादी कौमी अकेलाके साथ किसी भी तरहका ताल्लुक नहीं । झगड़ेके कारण तो आर्थिक और राजनीतिक यानी माली और सियासी हैं । और अिन्हींको दूर करना है । यूरोपमें रॉटी-बेटी व्यवहार है । फिर भी यूरोपके लोग आपसमें जिस तरह लड़ लड़कर मरते हैं, उस तरह तो हम हिन्दू-मुसलमान अितिहासभरमें कभी नहीं लड़े । हमारे आम लोग तो अलग ही रहे हैं ।

‘अछूत’ एक जुदा वर्ग है—हिन्दू धर्मके माथेपर लगा हुआ कलंक है । जातपाँत रुकावट है, पाप नहीं । अछूतपन तो पाप है, सख्त जुर्म है; और हिन्दू धर्म इस बड़ सौंपको समय रहते नहीं मार डालेगा, तो वह उसका खा जायगा । अछूतोंको अब हिन्दू धर्मके बाहर हरगिज न समझना चाहिये । उन्हें हिन्दू समाजके मात्र आदमी समझना चाहिये, और उनके धन्धेके मुताबिक वे जिस वर्णके लायक हों, उसी वर्णके उन्हें समझना चाहिये ।

वर्णकी मेरी की हुअी व्याख्या या तारीफके हिसाबसे तो आज हिन्दू धर्ममें वर्ण-धर्मका अमल हाँता ही नहीं । ब्राह्मण नाम रखनेवाले बिया पढ़ाना छोड़ बैठे हैं । वे और और धन्धे करने लगे हैं । यही बात थोड़ी बहुत दूसरे वर्णोंके बारेमें भी सच है । असलमें विदेशी हुकूमतके नीचे होनेके कारण हम सब गुलाम हैं और जिस तरह शूद्रसे भी हल्के—पश्चिमवालोंकी निगाहमें अछूत हैं ।

यह खत लिखनेवाला अनाज ही खाता है, अिसलिअे मांस खानेवाले मुसलमानोंके साथ खानेके लिअे उसे मुश्किल हो रही है । मगर उसे याद रखना चाहिये कि मांस खानेवाले मुसलमानोंके बजाय हिन्दू ज्यादा हैं । अन्नाहारीको जब तक उँसी गुराक परोसी जाय जिसके खानमें कोअी हर्ज न हो और सफाअीसे पकाअी गअी हो, तब तक उसे हिन्दू या दूसरे मांस खानेवालोंके साथ बैठकर खानेकी छूट है । फल और दूध तो जहाँ भी वह जायगा हमेशा मिल ही जायगा ।

वर्ण-धर्म

“शून-नोचका भाव मिटा दिया जाय, छोटे जातियाँ मिटा दो जायें और भोजन व्यवहार किता भी वर्गके साथ हो, तो परहेज न किया जाय और अन्तरजातीय या अेक वर्णके दू-दो वर्णमें विवाहकी गुंजायश रखे जाय, ऐसी हिमायत करनेके बाद भी यह कहना क्या मानी रखना है कि वर्णव्यवस्था हम तोड़ना नहीं चाहते और हम वर्णव्यवस्थाको बढ़ाना और सुधारना चाहते हैं ?

“अिसी सवालमेसे अेक सवाल यह पैदा होता है: ब्राह्मण और वैश्य आपनमें ब्याह कर सकते हैं और अिसे आप धर्मके खिलाफ नहीं मानते, तो ब्राह्मण और शूद्रके वांगमें भी आप यही दलील रखेंगे न? अैसी हालतमें हरिजनोके मुखिया अूँचे वर्णवालोंसे कहें कि ‘जब आप हमें अपनी बढ़कियाँ देंगे तबो हम मानेंगे कि आप हमें बराबरीके समझते हैं,’ तो आपके अिस कहनेका भरसा नहीं होता कि आप वर्णव्यवस्थाको तोड़ना नहीं चाहते । अुझे यह भाफ जानना है कि खानेपीने और शादा-व्यााके वांगमें आप क्या मर्यादा या हद रखते हैं ?”

यह सवाल अेक हरिजन सेवकने किया है । मरी वान अिसलिअे समझमें नहीं आती कि आज हम जिसे वर्ण-व्यवस्था मानते हैं, अुसे में नहीं मानता । आजकी वर्ण-व्यवस्थाका मतलब सिर्फ छुआछूत और रोटी-बेटी व्यवहारकी पाबन्दीयाँ हैं । आजकलके छुआछूतको मैं अखा भगतकी भाषामें ‘फालतू अंग’ मानता हूँ, छोड़ने लायक मानता हूँ । रोटी-बेटीकी पाबन्दीको वर्णका हिस्सा माननेके लिअे पुराने रिवाजके सिवा शास्त्रका कोअी आधार नहीं ।

अिससे अुलटे, वर्णका गुजारेके धन्धेके साथ नज़दीकका रिश्ता है । सबका धन्धा ही अुनका अपना धर्म है । अुसे जो छोड़ता है, अुसका वर्ण बिगड़ जाता है और अुसका अपना नाश होता है; यानी अुसकी आत्मा मर जाती है । यह आदमी वर्णमें मिलावट पैदा करता है और अिससे समाजको नुकसान पहुँचता है, समाजका अितजाम दूटता है ।

जब सभी अपना अपना वर्ण छोड़ देते हैं, तब समाजकी कुव्यवस्था या बदअन्तजागी बढ़ती है, अन्धाधुन्धी फैलती है और समाजकी बर्बादी होती है। ब्राह्मणोंके वर्णन दिया देनेका काम छोड़ा कि वह गिरा। क्षत्रियोंने प्रजाके बचावका काम छोड़ा कि उनका वर्ण बिगड़ा। वैश्य रुपया पैदा करना छोड़ दें, तो वे वर्णसे गिरते हैं। शूद्र सेवा छोड़ें, तो उनका पतन है। सब अपने अपने धर्ममें लगे रहकर बराबरीके रहते हैं। जो अपना धर्म छोड़ता है, उसीका पतन होता है। अपना धर्म छोड़नेवाले ब्राह्मणसे अपना धर्म पालनेवाला शूद्र अच्छा है।

असि वर्णमें अधिकारकी गुंजायश नहीं। यह सिर्फ धर्म है, फर्ज है। जहाँ फर्जकी बात है, वहाँ अँच-नीचका खयाल रह ही नहीं सकता।

आज वर्ण-धर्म मिटा हुआ दीखता है। अंक वर्ण भी अपना धर्म छोड़ दे, तो वर्ण मिट जाता है। आज तो ब्राह्मणने ब्राह्मणपन, क्षत्रियने क्षत्रियपन और वैश्यने वैश्यपन छोड़ दिया है। कोअी यह शंका कर सकता है कि रुपया कमानेके लिये तो सभी पचते हैं, असिलिये वैश्यपन कायम है यह माननेमें क्या बुराअी है? मगर अँसा कहना ठीक नहीं। आज वैश्य अपने ही लिये रुपया पैदा करते हैं, असिलिये गीताकी भाषामें वे चोर गिने जायेंगे। वैश्यका धर्म रुपया पैदा करके उसमेंसे अपने गुजारेके लायक रखकर बाकी समाजके काममें लगाना है। अँसा वैश्यधर्म पालनेवाला कोअी मुश्किलसे ही पाया जाता है। असिलिये वैश्यका वर्ण भी मिट ही गया।

अब रह गया शूद्रका धर्म। अिसे पालनेवाले कितने शूद्र निकलेंगे? बेमनसे की हुअी मजूरी सेवा नहीं। धर्ममें जबरदस्तीका काम नहीं। धर्मको समझकर समाजकी तरक्कीके लिये अपनी मर्जीसे की हुअी मजूरी ही सेवा कहलायेगी। अिस तरह दुःखके साथ यह मानना ही पड़ेगा कि वर्ण-धर्मका बिलकुल नाश हो गया है। शूद्रको मजूर बताकर व्याख्या करनेवालेने उसकी बेअिज्जती की है और हिन्दू धर्मको नुकसान पहुँचाया है।

लेकिन वर्ण-धर्म हिन्दुओंकी रगरगमें पैठा हुआ है। बिना समझे अुन्होंने भले ही उसका सम्बन्ध रोटी-बेटी व्यवहार और छुआछूतके साथ जाँझ दिया हो। वर्ण-धर्मके खयालके बिना हिन्दुओंको चैन नहीं पड़ता।

असलिये उसको फिरसे अुठारा जा सकता है । तपके बिना धर्मको जगाना या उसका अुद्धार करना नामुमकिन है । तप ही अेक अैसी बड़ी ताकत है, जिसके जरिये धर्म बच सकता है, कायम किया जा सकता है । ज्ञानके बिना तप तप नहीं, बल्कि शरीरको दुःख देना ही है । तप और ज्ञानका मेल तो ब्राह्मण धर्ममें ही हो सकता है । जो ब्रह्मज्ञान पानेके लिये मेहनत करे, वह ब्राह्मण होने लायक है । यह कोशिश आज होगी, तो किसी दिन हिन्दू धर्म यानी वर्ण-धर्मका अुद्धार हो जायगा । खुशकिस्मतीसे अैसी कोशिश करनेवाला अेक छोटा-सा वर्ग आज मौजूद है । अिससे मुझे अटल विश्वास है कि हिन्दू धर्म — शुद्ध सनातन धर्म — फिर अपना तेज प्रगट करके दुनियाको भलाअीका रास्ता दिखायेगा ।

मेरा हिन्दू धर्म सब जगह फैला हुआ है । उसकी किसी धर्मके साथ दुश्मनी नहीं और न वह किसीकी बेकदरी करता है । सब धर्म अेक दूसरेसे गुँथे हुअे हैं । सबमें कोअी न कोअी विशेषता पाअी जाती है । पर अंक भी धर्म दूसरेसे चढ़ता हुआ नहीं है । मेरा अैसा मानना है कि सब धर्म अेक दूसरेकी कमी पूरी करते हैं । असलिये किसी धर्मकी विशेषता दूसरेके खिलाफ़ नहीं हो सकती, दुनियामें सबके माने हुअे असूलांकी विरोधी नहीं होती । वर्ण-धर्मको अिस नजरसे देखने पर उसका वही मतलब निकलता है, जो मैंने किया है । और अितहास बताता है कि हिन्दू धर्मको माननेवाले किसी वक्त्रत अपनी मर्जीसे उसका पालन करते थे ।

अिस वर्ण-धर्मके पालनको फिरसे मुमकिन बनानेके लिये सबको खुशीसे शुद्धांका धर्म अख्तियार करनेकी ज़रूरत है । शुद्ध ज्यादातर शरीरकी मेहनतके जरिये सेवा करता है । यह धर्म सबके लिये आसान है । असलिये यही सब कर सकते हैं । सब अपनेको शुद्ध समझें, तो अूँच-नीचका भाव जाता रहे ।

कोअी कहेगा, 'अगर सब अपनेको शुद्ध बतावें, तो हरिजन ही क्यों न बतावें ?' मैं अिस आग्रहका बिल्कुल विरोध न करूँगा, लेकिन धर्ममें वर्ण पाँच नहीं हैं, और अछूतपन तो मिट ही रहा है । असलिये

में 'शूद्र' शब्द काममें लेता हूँ । मालवीयजी महागजकी अध्यक्षता या सदारतमें हिन्दू जातिके नामपर बम्बयीमें ली गयी प्रतिज्ञाके * बाद जन्मसे अछूतपन माननेकी हिन्दू धर्ममें गुंजायश नहीं रही । इसलिअे वर्ण-धर्मको फिरसे ऊँचा उठाते समय मयकी गिनती हरिजनोंमें करनेकी बात बेमौका समझी जायगी । हरिजन और दूसरे सब लोग शूद्र बनकर रहें, तो सहजमें सब हरिके जन यानी अश्वरके भक्त बन जायें ।

लेकिन सब समझ बूझकर मेवाका धर्म पालने लगे और अपनेको शूद्र मानने लगे, तो फिर यह तो हो ही नहीं सकता कि कोअी ब्रह्मविद्या न सीखे । अपनी अपनी अिच्छाशक्तिके हिसाबसे कोअी ब्रह्मविद्या सीखेगा और सिखायेगा, कोअी प्रजाका पालन करेगा और कोअी रूपया पैदा करेगा । सबका रहन-सहन लगभग अंका होगा । यह हालत नहीं रहेगी कि अेक करोड़पति है और दूसरा भिखारी ! वैश्यका धन प्रजाका माना जायगा । ये तीनों ताकतें सिर्फ समाजकी सेवामें लगायी जायेंगी । सब शूद्र ही माने जायेंगे, इसलिअे ऊँच-नीचका भाव न होगा । इसीके साथ साथ वर्ण-धर्म फिर ऊँचा उठेगा ।

वर्ण-धर्ममें पीड़ी दर पीड़ीकी वान है ही । उसके बिना अच्छा बन्दोबस्त हो नहीं सकता । इसलिअे विद्या पढ़ानेवालेकी औलाद अभी धर्मको पालेगी । सबके सब ब्रह्मज्ञानी नहीं हो सकते । हो जायें तो कोअी हर्ज नहीं । और ब्रह्मज्ञानी होना तो सेवामें कमाल हासिल करना ही है । उसमें घमण्ड अथवा खुदगर्जीकी वृत्त नहीं हो सकती । और अैसे ब्रह्मज्ञानियोंकी फसल अच्छी हो, तो वर्ण-व्यवस्था फिरसे कायम हो सकती है ।

अब दो बातें रोटी-बेटी व्यवहारके बारेमें ।

अपरका हिस्सा जिसने ठीक तरह समझ लिया है, उसके लिअे तो असलमें और कुछ लिखना बाकी रहता ही नहीं । काअी किसीके साथ रोटी खानेको या चाहे जिसे अपनी लड़की दे डालनेको बाँधा नहीं है । इसलिअे कुदरती तौरपर सब अपने जैसे रीतिरिवाज और आदतवालोंके साथ रोटी-बेटी व्यवहार रखेंगे । मैंने अभी अंक ही वर्णके बारेमें सोचा

* देखो, पुस्तकके आखिरमें परिशिष्टमें ।

हैं और हरिजन उसके बाहर नहीं; इसलिये अतना कहना काफी है कि अपनी सद्गुणियतके हिसाबसे सब अपने रिश्ते ढूँढ लेंगे और जहाँ उनकी आत्मा संतुष्ट होगी, वहीं खायेंगे बैठेंगे। छुआछूत चली जाय तो फिर इस बारेमें ज्यादा कहने-करनेको कुछ नहीं रह जाता।

अखीरमें बहुत बार कही हुई बात फिर दुहरा दूँ। इस वर्ण-व्यवस्थाके प्रश्नका अछूतपन मिटानेके साथ सीधा सम्बन्ध नहीं। अछूतपन मिटाना हर हिन्दूका परम धर्म है। इसीके लिये हरिजन-सेवक-संघकी हस्ती है। उसने अपने क्षेत्रकी मर्यादा बाँधी है। उस मर्यादाके बाँधनेमें मेरा खास हाथ है।

वर्ण-धर्मके विचार अभी तो मेरे निजी विचार हैं। उन्हें जो न माने, उसे भी अछूतपन दूर करनेसे न चूकना चाहिये। मैं उसमें विशेष करके भाग लेता हूँ, इस खयालसे किसीको भड़कानेकी ज़रूरत नहीं। वर्ण-व्यवस्थाके मेरे विचारोंको हिन्दू जाति न माने, तो वे मेरे पास ही रह जायेंगे। मैं उन्हें जबरदस्ती नहीं मनवा सकता, मनवानेकी इच्छा भी नहीं रखता। ये विचार हिन्दू धर्मके खिलाफ होंगे, तो मैं खुद हिन्दू जातिमेंसे निकल जाऊँगा। लेकिन अछूतपन मिटानेकी प्रतिज्ञाका पालन करना तो सब हिन्दुओंका एकसा धर्म है। मैं अपना एक भी विचार छिपाकर किसीको दगा देना नहीं चाहता। वर्ण-व्यवस्थाका सवाल अछूतपनके साथ टेढ़ा-मेढ़ा सम्बन्ध रखता है, इसलिये मैं समझ सकता हूँ कि मेरे सार्थी और दूसरे इस बारेमें मेरे विचार जानना चाहते होंगे। इसी कारण मुझे अपने ये विचार खोलकर बताने पड़ते हैं। मगर इन विचारोंसे किसीको सोचविचार या परेशानीमें पड़नेकी ज़रा भी ज़रूरत नहीं। धर्मके सवालमें व्यक्ति कुछ भी नहीं। वे आते रहेंगे और जाते रहेंगे। धर्म सदा रहनेवाला है। वह चलता ही रहेगा। उसके बारेमें सदा ही कल्पनाओं होती रही हैं और होती रहेंगी। जिस तरह श्रीश्ररके गुणोंका पार नहीं, वैसे ही धर्मकी मर्यादाका भी पार नहीं। उसे सब तरहसे किसीने नहीं जाना। सब जितना जानते हैं, उतना पालन करते रहें, तो धर्मकी गाड़ी आगे चलती रहेगी। अतना समझकर मुझे अलग रखकर ही सब अपने अपने लिये धर्मकी खोज करें। इसकी खोज

करनेकी शर्तें दुनिया भरमें जाहिर हैं । उन शर्तोंका पालन करनेवाले ही धर्मको किसी हद तक पहचानेंगे । सारे ज्ञानके पीछे उसे पानेके नियम होते हैं । अुर्न्हींमेंसे मेहनत अेक है । धर्मका खोजके लिये सबसे जरूरी मेहनत है । और इसीलिये उसका खोजकी शुरुआतमें ही अनुभवियोंने यम-नियमोंका पालन बताया है ।

‘हरिजनबन्धु’, ता० १९-३-’३३

११

आज तो अेक ही वर्ण है

(‘चिट्ठी-पत्रोंमेंसे ’ अेक सवाल)

“ अेक साथीने पूछा, आप कहत हैं कि आप वर्ण-धर्मको रखना चाहते हैं । फिर भी आप यह कैसे कहत हैं कि हम सब शूद्र हैं और अेक ही वर्ण हैं ? इसके सिवा, हम तो आज शूद्र कहलानेके लायक भी नहीं हैं । इसका क्या होगा ? ”

अु० — आज अगर हमें सब हिन्दुओंके वर्णके हिसाबसे हिस्से बनाने ही हों, तो अकेले शूद्र वर्णके सिवा दूसरा कोअी भी वर्ण नहीं । और इस सच्ची हालतको मान लेनेमें ही हिन्दू जातिका भला है । अितना मान लेनेसे अँच-नीच वर्णके भेद अपने आप मिट जायेंगे । अैसा नहीं है कि इसके बाद कोअी ब्रह्मविद्या या दूसरी विद्या हासिल करनेकी कोशिश नहीं करेगा । मगर इसका मतलब अितना तो है ही कि सब खुद मेहनत करके, हाथपैर हिलाकर रोटी पैदा करेंगे और अपनी दूसरी शक्तियाँ आम लोगोंकी भलाअीके काममें लगावेंगे । यह सच है कि इस तरहका वर्ण-धर्म अमलमें आया हुआ हमने देखा नहीं; पर इसमें मुझे कोअी शक नहीं कि हिन्दू धर्मके सतयुगमें इस वर्ण-धर्मका पालन हुआ होगा ।

‘हरिजनबन्धु’, ता० २६-३-’३३

वर्ण-व्यवस्थाका रहस्य

वर्ण-व्यवस्थाका मेरा लेख पढ़कर अंक विद्यार्थी लिखता है :—

“ क्या आप जन्मसे वर्णको मानते हैं ? क्या आपका यह कहना है कि ब्राह्मणके घर पैदा हुआ मनुष्यका काम ब्राह्मणका ही होगा और इसी तरह भंगीके यहाँ जन्मा हुआ आदमी भंगीका ही काम करेगा ? फिर का मतलब तो यह हुआ कि जन्मका भंगी वेद और शास्त्र नहीं पढ़ सकता और वेदशास्त्रका पण्डित होकर भी वह ब्राह्मणका दर्जा नहीं पा सकता । आपके कहनेके माफिक तो हरभेद प्राणी जन्मसे ही ऐसा बन्धन लेकर पैदा होता है कि भुभी बन्धनमें रहकर खस काम करके खुले सन्तुष्ट रहना चाहिये और भुभीमें खुले मोक्ष पानेकी कोशिश करना चाहिये । इस भुगृहको मजबूत करना व्यक्तिवादकी हत्या करनेके बराबर है और व्यक्तिकी काम करनेकी और विचार करनेकी आजादीकी छीन लेना है ।

“ भिन्सानि कमजोरियों या मानवी दुर्बलताओंसे भरे इस संसारमें जानबूझकर वर्ण विभाग रखनेसे समय पाकर जातपाँतकी बुराियाँ जरूर पैदा हो जायेंगी । आजकलकी पढ़ाओके हिसाबसे तो हर शरस्का काम करने और सोचनेकी आजादी होनी चाहिये । व्यक्तिकी आजादीका यही मूल मंत्र है । हर आदमीको दुनियाँमें सेवा या कर्तव्यकी खातिर अपनी मर्जीके मुताबिक कोभी भी अच्छा काम करने देनेमें समाज, धर्म या किसी व्यक्तिको कौनसी बाधा होनी चाहिये ? हर व्यक्तिको — फिर भुसका जन्म कहीं भी क्यों न हुआ हो — जन्मसिद्ध अधिकार है कि वह ज्ञान, शक्ति, धन और सेवामेंसे श्रेष्ठको या सबको साधे । जीवनकी पूर्णताके लिये चारों जरूरी हैं । इस जीवनकी पूर्णताको समझने और भुसके अनुसार फर्ज अदा करनेमें ही धर्मकी सच्ची सेवा है । आप इस बारेमें अपने विचार ज्यादा साफ करें तो अच्छा हो । ”

हाँ, मैं जन्मसे होनेवाला वर्णका बैटवारा मानता हूँ । अगर ऐसा न होता, तो वर्ण-व्यवस्थाका कुछ भी अर्थ नहीं होता । तो वर्ण-व्यवस्थाका जरा भी फायदा न रहता और वह निरा शब्दजाल रह जाता ।

वर्णका बैटवारा कोभी भिन्सानकी बनायी हुयी योजना नहीं । इसकी जड़ तो क़ुदरतके कहिये या अीश्वरके कानूनमें है । कानूनका

पालन करना न करना मनुष्यके हाथमें है। इसीलिसे मनुष्यके व्यक्तित्वकी कोअी हानि नहीं होती। आग कहती है कि मुझे छुओगे तो जलोगे। हम आगकी बात न सुनें और व्यक्ति-स्वातंत्र्य पर अमल करनेके लिसे आगको छुएं, तो हमें जरूर जलना पड़ेगा। इसी तरह वर्ण-व्यवस्थाके नियमकी बात है। ऋषि-मुनियोंने तपस्या करके अपने ध्यानमें देखा कि वर्णका बँटवारा समाजकी बढ़तीके लिसे जरूरी है। और इसीलिसे अन्होंने समाजके हिस्से किये। इसका अमल करना न करना हमारे हाथकी बात है। न करें तो कोअी बाँधकर मारनेवाला नहीं। पर कुदरत सजा देगी, तो उसे कौन रोक सकेगा? या उसे सजा कहें ही क्यों? वर्ण-विभागके नियमोंको न माननेका जो कुदरती परिणाम होगा, उसे कौन रोक सकता है? इस तरह वर्ण-विभागसे व्यक्तिका नुकसान हाँ ही नहीं सकता।

पर जन्मसिद्ध वर्ण कैसे? यह काँअी मेरी जेबमेंसे निकाली हुआ बात नहीं। वर्ण-विभागकी जड़में ही जन्म है। ब्राह्मणके नाममें ब्राह्मणपन है और वह अपनी औलादको ब्राह्मणपनके लिसे तैयार करेगा। इसी तरह शूद्रकी बात है। शूद्र अपने लड़केको शूद्रपनके लिसे तैयार करेगा। इसका मतलब यह नहीं कि शूद्र ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता। वर्ण-व्यवस्थाका सम्बन्ध ही आजीविकाके साथ है। जिस वर्णमें जो पैदा हुआ है, वह उसी वर्णके धंधेपर गुजर करेगा। हर वर्ण दूसरे वर्णकी जानकारी ले, तो इसमें कोअी हर्ज नहीं। अपनी अपनी तरक्की और आज्ञादीकी रक्षाके लिसे सबमें चारों वर्णोंके मामूली गुण होने चाहिये। लेकिन हर आदमीमें अपने वर्णका गुण विशेष करके मालूम पड़ना चाहिये।

वर्ण-व्यवस्थामें दुनियावी लालचको हृदमें रखनेकी बात है, ताकि आत्माके विकासके लिसे अधिक गुंजायश रह सके। दुनियावी चीजें और दुनियावी सुख फलभर रहनेवाली चीजें हैं। मनुष्य अिन्हींको पानेमें फँसा रहे और अिन्हींको अपना ध्येय बनाले, तो आत्माका विचार नहीं कर सकता। अिरामें पुरुषार्थको किसी भी तरह आँच नहीं आती। मनुष्यको जब गुजारेके साधनकी तलाश नहीं करनी पड़ती, आजीविकाका साधन तैयार

ही हो, तब उसकी सारी कोशिश सिर्फ आध्यात्मिक खोजके लिये होती है। मुझे ऐसा विश्वास हो गया है कि हिन्दू जातिने वर्ण-व्यवस्थाकी खोज करके अक बड़ी भारी आध्यात्मिक खोज की है और आध्यात्मिक तरक्कीका सामान तैयार किया है। समयके फेरसे हम इस चीजको भूल गये, वर्ण-व्यवस्था अव्यवस्थित हो गयी, वह छुआछूतमें खत्म हो गयी, और रोटी-बेटी व्यवहारमें ही रह गयी। उसमेंसे वर्णका संकर यानी दोगालापन शुरू हुआ और पतन हुआ। हरअक दूसरे वर्णका धन्धा करनेकी कोशिश करने लगे। ब्राह्मण लालची हो गये और अन्होंने अपना ब्राह्मणका धर्म छोड़ दिया। 'दरियामें लगी आग बुझा कौन सकेगा' ? नमक जब खारापन छोड़ दे, तो फिर खारापन रहेगा कहाँ ? किसीसे आज हिन्दू धर्मकी दुर्गति हुयी है।

‘हरिजनबन्धु’ ता० ९-४-’३३

१३

पाँच सवाल

वर्ण-धर्मके मेरे लेखके बारेमें एक भले आदमीने पाँच सवाल मेजे हैं :

- “ १. गुजारेके लिये ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र क्या काम करें ?
२. सेवाके लिये चारों वर्ण क्या क्या काम करें ?
३. सेवाका काम और गुजारेका काम अक ही हो या अलग अलग हो ?
४. आपने लिखा है कि इस वर्ण-धर्मका पालन फिरसे मुमकिन बनानेके लिये सबको अपनी खुशीसे शूद्र बन जाना चाहिये, शूद्रका धर्म अपना लेना चाहिये। अगर शूद्रके अलावा ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य शूद्रका धर्म अपना लें, तो क्या धुनकी अपना धर्म छोड़कर दूसरेका धर्म अपनानेका दोष नहीं लगेगा ?
५. आपने लिखा है कि खुशकिस्मतीसे आज ब्रह्मकी जाननेकी कोशिश करनेवाला अक छोटा-सा वर्ग मौजूद है, जिसके जरिये शुद्ध सनातन धर्म फिरसे अपना तेज प्रगट करके दुनियाको भलाभीका रास्ता बनायेगा। वह वर्ग कौनसा है ? ”

किसीको सवाल पूछनेसे मैं रोकना नहीं चाहता, पर अितना ज़रूर कहना चाहता हूँ कि कभी सवाल असली लेख पढ़नेसे हल हो जाते हैं। जिस लेखमें उस विषयके अंदर आनेवाले सवालोंका जवाब न मिले, वह लेख निकम्मा हो सकता है। नीतिके बारेके लेखोंको एक ही दफा पढ़कर नहीं छोड़ देना चाहिये। ऐसे लेखोंको बार बार पढ़नेसे ही बुनके भीतरके सवाल अपने आप हल हो जाते हैं। पूछनेवालेसे मेरी प्रार्थना है कि वह वर्णाश्रम पर मेरा लेख पढ़ जाय, ताकि खुसे पता चले कि यहाँ मैं जो कुछ लिखूँगा, वह सब मेरे लेखमें मौजूद है। मेरी यह सूचना सबके लिये है। पूछनेवाला यह न समझे कि ख़ास तौरपर उसीके लिये है। हममें पढ़नेके बाद मनन करनेकी आदत जाती रही, जिसलिये हम पराधीन-जैसे बन गये हैं; और हर बातमें दूसरेकी राय जानना चाहते हैं। किसी भी आदमीके बारेमें यह हालत पैदा होना दयाजनक बात है। असूलमेंसे लोटा असूल निकालनेकी शक्ति हममें आ जानी चाहिये। थोड़ेसे अभ्याससे यह शक्ति मिल जाती है।

अब प्रश्नोंका उत्तर :

१. ब्राह्मण ब्रह्मज्ञान देगा, क्षत्रिय रक्षा करेगा, वैश्य व्यापार वगैरा से धन कमायेगा, शूद्र सेवा करेगा और सब अपना अपना कर्तव्य करके अपनी रोजी कमायेंगे, लेकिन गुज़ारेसे ज्यादा नहीं कमायेंगे।

२. वर्ण अेक धर्म है, अधिकार नहीं। जिसलिये वर्ण सिर्फ सेवाके लिये ही हो सकता है, स्वार्थके लिये नहीं हो सकता। जिस तरह न कोअी अँचा है, न कोअी नीचा। जो ज्ञानी अपनेको अँचा माने, वह मूर्खसे भी बुरा है। वह वर्णसे गिर जाता है। यहाँ यह भी समझना ज़रूरी है कि वर्ण-धर्ममें कोअी अैसी बात नहीं कि शूद्र ज्ञान न हासिल करे या रक्षाका काम न करे। हाँ, शूद्र ज्ञान देकर या रक्षाका काम करके रोजी न कमाये। या क्षत्रिय सेवा न करे, अैसी बात भी नहीं; लेकिन सेवासे रोट्टी न कमाये। जिस सीधे सहज धर्मका सब पालन करें, तो जो झगड़े आज होते हैं, जो रस्साकशी अेक दूसरेके साथ होती है, धन अिकट्टा करनेके लिये जो होड़ चलती है, जो झूठ चलती है, जो कलह और लड़ाअी मचती है, वह सब मिट जाय। जिस नीतिका पालन सारी दुनिया करे

या न करे, सब हिन्दू करें या न करें, जितने करेंगे उतना संसारका लाभ होगा। मेरा यह विश्वास बढ़ता जाता है कि वर्ण-धर्मसे ही संसारका सुद्वार होगा। वर्ण-धर्मका सच्चा अर्थ सेवा धर्म है। जो कुछ किया जाय, वह सेवा भावसे किया जाय। सेवामें सौदेकी गुंजायश नहीं।

अब रही बात शरीर-श्रमकी। जहाँ तक मैंने गीताको समझा है, मुझे लगता है कि गीतामें यज्ञके कभी अर्थ किये गये हैं। उनमें शरीर-श्रम भी आ जाता है। समाजकी भलायी या लोक संप्रदाहके लिये यज्ञके तौरपर शरीरसे मेहनत करना भी सब वर्णोंका धर्म है। जिस यज्ञसे कोसी नहीं बच सकता, क्योंकि मेहनतके बिना शरीरका निभाव भी नहीं हो सकता। जो यह मेहनत या श्रम रूपी यज्ञ नहीं करता, वह चोरी करता है। यह कहना कि मेहनत शूद्रका ही काम है, धर्मको न जानना है। परिचर्याका अर्थ शरीर-श्रम नहीं। जो आदमी अपने बरतन मँजता है, वह मेहनत करता है, परिचर्या नहीं करता। जो आदमी जीविकाके लिये दरवाजेपर बैठकर चौकीदारी करता है, वह मेहनत नहीं करता, परिचर्या ज़रूर करता है।

३. तीसरे प्रश्नका उत्तर देनेकी अब आवश्यकता नहीं रहती।

४. यह सवाल करते वक्त पूछनेवाला भूल गया है कि मेरा कहना यह है कि आज वर्ण-धर्म करीब करीब मिट गया है। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्योंने कभीसे अपना वर्ण छोड़ दिया है। वे अपना धर्म छोड़कर अधिकार ले बैठे हैं। दोष तो हो चुका है। लेकिन शूद्रोंका धर्म अपनाकर वर्णसे गिरे हुअे ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य उस दोषसे बरी होनेकी शुरुआत कर सकते हैं। शूद्रको हल्का मानना अिनका धर्म कभी था ही नहीं।

५. जो लोग भागवत धर्म यानी भक्ति मार्गका दिलसे अमल करते हैं, अीश्वरको .खुश रखनेकी खातिर सिर्फ गुज़ारा लेकर लोगोंकी सेवा करते हैं, वे अपने अमलसे ब्रह्मज्ञान देते हैं। अिनमें विद्वान भी हैं, और अविद्वान भी। ये अपना काम किसीको बतानेके लिये नहीं करते। अिन सबके नाम मैं नहीं जानता। मेरा यह विश्वास है कि अैसे लोग मौजूद हैं। हाँ, अिनकी तादाद थोड़ी है।

‘हरिजनबन्धु’ १६-४-’३३

विरोधाभास

अक भाओी मेरे लेखोंका ध्यानसे अध्ययन करते हैं । मैंने हालमें अक वर्णके दूसरे वर्णके साथके रोटी-बेटी व्यवहारके बारेमें जो कुछ लिखा है, उसके साथ मेरे कओी बरस पहलेके अिस विषयके लेखोंका मेल बैठानेमें अुन्हें मुश्किल पड़ती है ।

१९२१ के अक्तूबरमें मैंने हिन्दू धर्मके बारेमें अक लेख लिखा था । अुसमेंसे अिन भाओीने जो अुद्धरण दिया है, अुसमेंसे अिनका निकाला हुआ हिस्सा छोड़कर बाकी ज्यों का त्यों यहाँ देता हूँ :

“ अिस तरह हालों कि वर्णाश्रम धर्मको अक वर्णके साथ दूसरेके रोटी-बेटी व्यवहारसे धक्का नहीं लगता, फिर भी हिन्दू धर्म अलग अलग वर्णोंके बीच रोटी-बेटी व्यवहारको आग्रहके साथ नापसन्द करता है । हिन्दू धर्म संयमकी आखिरी हद तक पहुँच सका है । यह धर्म आत्माके मोक्ष या छुटकारेके लिअे देहका दमन करनेके लिअे कहता है । अक मर्यादित वर्गमेंसे अपने घरके लिअे लड़की पसन्द करनेकी विधि भी भारी संयमके सिवा और क्या ज़ाहिर करती है ? . . . आत्माकी जल्दी तरकी करनेके लिअे अक वर्णके साथ दूसरेके रोटी-बेटी व्यवहारकी मनाओी ज़रूरी चीज़ है । ”

अुसके बाद पिछले ४ नवम्बरको अखबारमें भेजे अुअे मेरे लेखमेंसे यह भाओी जो अुतारा देते हैं, वह भी अुनके निकाले अुअे हिस्सेको छोड़कर देता हूँ :

“ अक वर्णके साथ दूसरेके रोटी-बेटी व्यवहारकी मनाओी हिन्दू धर्मका अंग नहीं, वह समाजका अक पुराना रिवाज है । शायद जब हिन्दू धर्मकी गिरी हालत होगी, तब वह घुस गया होगा । . . . आज ये दोनों मनाओियाँ हिन्दू समाजको कमजोर बना रही हैं; और अिनपर जोर देनेसे आम लोगोंका मन जीवनके विकासके लिअे ज़रूरी

मूल तत्वोंपर डटे रहनेके बजाय झुलटे रास्ते चल पड़ा है । . . .
स्नान-पान और ब्याह-शादीकी पाबन्दियाँ हिन्दू समाजकी तरकीको रोकती हैं । ”

अिन अुतारोंको बेलाग होकर पढ़नेसे मुझे अिन दोनोंके बीच कोअी भी विरोध नहीं जान पड़ता; खासकर ये लेख पूरे पढ़े जायँ, तो विरोधकी झलक भी न दिखाअी दे । १९२१ के लेखमें मैंने हिन्दू धर्मकी छोटीसे छोटी रूपरेखा दी थी । पिछले ४ नवम्बरको मुझे अनगिनत जातपाँतों और अुनकी पाबन्दियोंपर विचार करना था । आश्रममें जैसा रहनसहन आज है, वैसा हा १९२१ में भी था । अिस तरह मेरे अमलमें तो कोअी फर्क पड़ा ही नहीं । अच भी मैं मानता हूँ कि रोटी-बेटी व्यवहारपर खुशीसे लगाअी हुआी रोकमें संयम है । १९२१का लेख आज लिखूँ तो शायद अेक शब्द बदलूँ । ‘निषेध’ या मनाअी शब्दके बदले अिसी लेखमें कुछ लकीरांसे पहले काममें लाये हुअे शब्द फिर दुहराअूँ और कहूँ कि ‘आत्माके जल्दी विकास या तरक्कीके लिअे वर्ण-वर्णके बीच रोटी-बेटी व्यवहारकी खुशीसे की हुआी मनाअी जरूरी चीज है ।’

४ नवम्बरके लेखमें मैंने जो कुछ लिखा है, अुसके हांत हुआे भी मैं कहूँगा कि अेक वर्णका दूसरे वर्णके साथ रोटी-बेटी व्यवहार करना भाअीचारेकी भावना बढ़ाने या अलूतपन मिटानेके लिअे जरा भी जरूरी नहीं । पर अिसके साथ ही, अिसमें भी शक नहीं कि बाहरसे दूसरेकी लगाअी हुआी पाबन्दी समाजके विकासको रोकती है । और अिन पाबन्दियोंका सम्बन्ध वर्ण-धर्मके साथ मानना आत्माकी मुक्तिमें रुकावट डालता है । अैसा हो तो वर्ण धर्मके लिअे बोझ बन जाय ।

पर अितना कहनेके बाद मेरे लेखोंके अिस मेहनती विद्यार्थीसे और अिसी तरह अुनमें रस लेनेवाले दूसरे लोगोंसे मैं कहना चाहता हूँ कि मुझे हमेशा अेक ही शकलमें दीखनेकी कांअी परवाह नहीं । सचाअीकी खोजमें मैंने बहुतसे विचार छोड़े हैं और बहुतसी नअी चीजें सीखी हैं । अुम्रसे मैं भले ही बूढ़ा हुआ हूँ, पर मुझे अैसा नहीं लगता कि मेरा भीतरी विकास रुका है या देहके जाने पर भी बह रुक जायगा । मुझे अेक ही बातकी

चिन्ता है और वह है हर वक्त सत्यनारायणकी वाणीपर अमल करनेकी तत्परता या मुस्तैदी । और जिसलिअे किसीको मेरे दो लेखोंमें विरोध-जैसा जान पड़े और मेरी समझदारीपर भरांसा हो, तो अेक ही विषयपर मेरे दो लेखोंमेंसे पिछलेको प्रमाणभूत माने ।

‘हरिजनबन्धु,’ ता० १६-४-’३३

१५

आयन्दा वर्णधर्म

‘अेक सनातनी’ लिखते हैं :

“हरिजनबन्धुके पिछले अंकमें अेक हरिजनको ध्यानमें रखकर आपने लिखा है : ‘मेरे खयालमें वर्ण-धर्म मिट गया है और अुस धर्मका अुद्धार आपको वर्णके बाहर रखकर नहीं हो सकता । लेकिन मेरे जीते-जी अगर वर्ण-धर्मका अुद्धार होना है, तो जो आपका वर्ण माना जायगा, वही मेरा वर्ण समझना; क्योंकि मैं अपनेको खुशीसे बना हुआ हरिजन मानता हूँ ।’

“यह तो साफ दीखता है कि वर्ण-धर्म मिट गया । यह बात भी गले अुतरती है कि रोटो-बेटी व्यवहारकी मनाअीसे और छुआछूतकी हठ रखनेसे वर्ण-धर्म बचता नहीं और टिकता भी नहीं । लेकिन अिस बारेमें मनमें शंका रह करती है कि अब सच्चे वर्ण-धर्मका फिरसे अुद्धार होगा या नहीं । जब फिर अुद्धार होगा, तब करोड़ों हिन्दुओंमेंसे हरअेकका वर्ण कौन तय करेगा ? किन तत्वों पर यह तय होगा ? और यह बात किन तत्वोंपर और किसके हाथों तय होगी कि सैकड़ों जातियों और हजारों धंधोंमेंसे कोअी अेक जाति या कोअी अेक धन्धा किसी अेक वर्णके पेटमें जायगा ? क्या आपको लगता है कि वर्ण-व्यवस्था फिरसे चालू करने जैसी शक्ति और संगठन अब किसी भी समाजमें पैदा होगा ? या आप यह समझते हैं कि रूस-जैसी हुकूमत अिसे तय कर देगी ? कृपा करके अिन सवाल्लोंका विस्तारसे जवाब दीजिये, ताकि मेरे-अैसा सनातनी आपके विचार समझ सके ।”

अिन सवालोक सीधा जवाब देना कठिन है । कोअी तीनों कालकी बात जाननेवाला ही दे सकता है । मेरे लिअे वर्तमानकी जानकारी और अुसके अनुसार अमल करना काफ़ी है । 'काल करे सो आज कर, भाज करे सो अब, पलमें परलय होयगी, बहुरि करैंगो कब ?' यह नास्तिक आस्तिक दोनों दिलसे गा सकते हैं । नास्तिकका लाभ 'खाओ, पिओ और मौज अुड़ाओ' में खत्म हो जाता है । आस्तिकका फायदा भगवानकी भक्तिमें याने मिले हुअे फ़र्ज़को दिलोजानसे अदा करनेमें खत्म होता है । मैं अपनेको आस्तिक मानता हूँ और आजका लाभ लेनेमें ही सफलता समझता हूँ । आज जो कहूँगा वह कल भूँगा, यानी यह यकीन है कि भविष्य वैसा ही होगा । अिसलिअे मुझे अिसकी फिक्र नहीं होती कि वर्ण-धर्मका आगे क्या होगा । अिसकी चिन्ता न करनेकी सलाह मैं 'अेक सनातनी' को भी देता हूँ । जो लोग मेरे-जैसे वर्ण-धर्मको मानते हैं और मेरी व्याख्याको स्वीकारते हैं, वे अपना रहन-सहन अुसी तरहका बनायें तो समझा जायगा कि अुन्होंने वर्ण सम्बन्धी अपने धर्मका पालन किया ।

फिर, अेक और बात भी ध्यानमें रखने लायक है । किसी भी धर्मके मूल सिद्धान्त व्यापक हाने लायक होने चाहियें । जिनमें अैसा गुण न हो, वे सिद्धान्तके तौरपर नहीं माने जा सकते । अगर वर्ण-धर्म अैसा अुसूल न हो, तो अुसकी पैदायश खास समय, जगह और संयोगोंमें होनी चाहिये और अिनमेंसे अेकके बदलनेसे भी वह व्यवस्था बदल जायगी । वर्ण-व्यवस्था अैसी क्षणजीवी हो, तो अिसका कुछ भी विचार नहीं किया जा सकता कि वह रहे या न रहे । लेकिन मेरी व्याख्याके वर्ण-धर्मको मैं सब जगह फैला हुआ अुसूल मानता हूँ । अुसके अमलपर मनुष्य-समाजकी हस्तीका दारमदार है । अगर मेरे खयालमें कुछ भी सार होगा, तो आगे चलकर वर्ण-धर्म फैलकर रहेगा; फिर भले ही वह किसी भी नामसे पहचाना जाय । वर्ण-धर्मका मतलब यही है कि हर अिन्सान अपने बापदादेके गुजरके साधनसे सन्तुष्ट रहे । अिस योजनाकी जड़में अहिंसा है, अीश्वरके क़ानूनकी जानकारी है, शुद्ध अर्थ-शास्त्र है, अिन्सानियत है । अिस वर्ण-धर्मपर अमल न

हुआ, तो जैसी कभी नहीं हुअी वैसी खानाजंगी या गृह-युद्ध होनेवाला है । जैसे जैसे करोड़ोंमें जागृति आयेगी, वैसे वैसे सब धनवान वनना चाहेंगे, सब बड़े बनना चाहेंगे, नीचे माने जानेवाले धन्धे कोभी न करना चाहेंगे और ऊँच-नीचका खयाल ज्यादा ज्यादा फैलेगा । मुझे तो लगता है कि इसका नतीजा आपसकी मारकाटके सिवा और कुछ न होगा ।

लेकिन अन्सानके स्वभावमें ही अपना बचाव करनेका गुण बैठा हुआ है, इसलिये मनुष्य वर्ण-धर्मका आसरा लेकर बच जायगा । अपना अपना खानदानी धन्धा करके, किसी भी धन्धेको ऊँचा या नीचा माने बिना, सब अपना जीवन बितायेंगे । ऐसा होने पर कोअी ब्राह्मण, क्षत्रिय वगैरा नामसे न पहचाना जाकर किसी दूसरे नामसे जाना जाय, तो उसकी चिन्ता न होनी चाहिये । वर्ण चारके बजाय दस भी हो सकते हैं और चारसे ज्यादा भी हो सकते हैं । अतना साफ है कि वर्णके बड़े कानूनपर चलकर हम पूँजीवाद और मजदूरवाद वगैराके झगड़ेसे बच जाते हैं । ऐसी व्यवस्थामें अेक किनारे खूब लालच, खूब दौलत और खूब घमण्ड न होगा; और दूसरे किनारे लाचारी, कंगाली और दीनता न होगी । सब कोअी मिल कर रहेंगे और कोअी किसीको ऊँचा या नीचा न मानेगा ।

अतना लिखनेके बाद अपनी कल्पनाके घोड़ेपर बैठकर थोड़ी सैर करूँ । अगर कोअी वर्ण-व्यवस्थाको बनानेका काम मुझे सौंप जाय और मैं हिन्दुस्तानमें रहूँ, तो ब्राह्मणोंसे शुरूआत करूँ । वे सचमुच अनुभवज्ञान और उसकी बुनियादपर खड़े होनेवाले आचारके रक्षक होंगे और इसलिये दूसरे वर्णोंकी उनसे पट जायगी । कारण, उनका अनुभव स्वयंसिद्ध होनेसे सब अपने आप उनके पीछे चलेंगे और उनमें परम्परागत हांशियारी भी होगी । यह सवाल नहीं रहेगा कि ब्राह्मण कौन है । आजके हरिजन कहलानेवालेको सब ब्राह्मणके तौरपर मानेंगे और ब्राह्मण कहलानेवाला शूद्र कहलानेमें नहीं झिझकेगा । मैंने जिस जमानेकी कल्पना की है, उसमें कोअी अड़चन पैदा न हांगी; क्योंकि उस जमानेमें ऊँच-नीचकी भावना जड़से मिट गअी होगी और सब अपने अपने घरका धन्धा करत होंगे और इस तरह सब अपनी अपनी जगह लग गये होंगे ।

कल्पनाके घोड़े पर की हुआ सैरका लम्बा-चौड़ा बयान करनेमें बहुत सार नहीं होता । इसलिअे अितना बयान करके खत्म करता हूँ, जिससे रास्ता दीख जाय । लेकिन मेरे इस लेखसे अितना सार तो निकलना चाहिये कि चूँकि वर्ण-धर्मको अहिंसक माना है, इसलिअे उसमें राज-दण्ड या जबरदस्ती गुंजायश तो है ही नहीं । अिन्सानके स्वभावमें वर्ण-धर्म होगा, ता उसीसे उसका सुद्वार हो जायगा । अगर यह मनुष्य स्वभावके खिलाफ होगा, तो ठीक ही है कि यह आज मिट गया है । यहाँ अिन्सानसे मतलब पशु जातिका अेक खास जानवर नहीं, बल्कि वह जिसमेंगे पशुपन दिन दिन कम होता जा रहा है और जो बेहोशीरो निकलकर आत्माको पहचाननेवाला बन गया है । अिन्सान आत्माको पहचाननेके लिअे बनाया गया है और आत्माके रूपमें अेक है । इसलिअे वह किसी न किसी दिन अूँच-नीचके झगड़ेमेंसे निकलकर अेकता बढ़ानेवाली 'वर्ण-व्यवस्थाको अपने आप अपनायेगा ।

‘हरिजनवन्धु’ ता० १-१०-’३३

१६

सच्चा ब्राह्मणपन

अेक बंगाली प्रोफेसरने लम्बा खत लिखा है । उसमेंसे नीचेका हिस्सा देता हूँ : —

“आपको यह जानकर दुःख होगा कि देशके कितने ही भागोंमें अछूतपन मिटानेकी हलचल रास्तेसे हट गयी है और उसने सिर्फ ब्राह्मणपन और उसके आदर्शोंके खिलाफ नीच और हिंसक प्रचारकी सूरत अख्तियार कर ली है । ब्राह्मण जमातको लोगोंकी आँखोंमें गिरानेके लिअे आधी व पूरी झूठ जानबूझकर फैलायी जातो है और लोगोंको भ्रमाया जाता है । क्या अछूतपनकी प्रथा अकेले ब्राह्मणोंमें ही है ? क्या दूसरे वर्णोंके हिन्दू भी सुतने ही गुनहगार नहीं ? मान लीजिये कि शास्त्र ब्राह्मणोंके बनाये दिये हैं; पर ऐसा प्रमाण कहाँ है कि आज जिस तरहका बेरहम अछूतपन हिन्दुस्तानके कुछ हिस्सोंमें

पाला जाता है, अतः लिये शास्त्रकी आज्ञा है ? . . . क्या यह सच नहीं है कि आजकी अछूतपन दूर करनेकी हलचलकी रूपल बनानेमें ब्राह्मणोंने बहुत ही बड़ा हिस्सा लिया है । क्या यह भी सच नहीं कि बड़ी धारासभा या केन्द्राय असेम्बलीके जिन मन्त्रियोंने हरिजन मन्दिर-प्रवेश बिलमें बाधा डाली, उनमेंसे ज्यादातर अब्राह्मण थे ? फिर किस लिये ब्राह्मणों पर दूट पड़ना चाहिये ? वे तो अछूतपनके अपने पैदा होनेवाली हालतकी गम्भीरताकी और लोगोंसे ज्यादा समझते हैं । ”

देशमें अछूतपन दूर करनेका आन्दोलन शुरू हुआ, उसके बहुत पहलेसे ब्राह्मणोंके खिलाफ हलचल शुरू हो गयी थी, और कभी सालसे चल रही है । इस आन्दोलनको चलायानेवाले अखबारोंके सिवा और कहीं भी मैंने ब्राह्मणपनके खिलाफ हिंसक या अहिंसक हमले हुअे देखे नहीं । हरिजनसेवक संघका ऐसे आक्षेपोंके साथ कोई सरोकार नहीं । यह बिल्कुल सच है, जैसा कि लेखकने कहा है, कि अगर मुझे पता चले कि अछूतपन मिटानेकी हलचल अपने रास्तेसे हटकर ब्राह्मणपनके विरुद्ध होन और हिंसक आक्षेपकी सूत अख्तियार कर चुकी है, तो मुझे दुःख होगा । इसलिये मैंने इस लेखकको लिखा है कि उन्होंने जो भारी बात कही है, उसके समर्थनमें उनके पास जो भी सबूत हैं वे मेरे पास भेज दें । मगर इस खतके सिलसिलेमें मैं ब्राह्मणपन और ब्राह्मणोंके बारेमें अपनी राय दोहरा देता हूँ ।

मैं मानता हूँ कि ब्राह्मणपनका मतलब है ब्रह्मका दर्शन करानेवाला शुद्ध ज्ञान । मेरी यह राय न हो तो मैं खुद हिन्दू नाम छोड़ दूँ । मगर मनुष्यसमाजके दूसरे लोगोंके साथ साथ सब ब्राह्मणोंमें भी सच्चा ब्राह्मणपन नहीं रहा । फिर भी मुझे मानना पड़ता है कि जगतके अिन तमाम वर्गोंमें ज्ञानकी यान्त्री सचाओकी खोजमें सब कुछ कुर्बान करनेवालोंमें ज्यादासे ज्यादा ब्राह्मण ही मिलेंगे । हिन्दूधर्मके सिवा मैंने एक भी दूसरा धर्म नहीं देखा जिसमें सच ब्रह्मज्ञानके खातिर खुशीसे फकीर बनकर रहनेवाला एक अलग वर्ग पीढ़ी दर पीढ़ी चला आता हो । ब्राह्मणोंने अपने लिये जो आदर्श ठहराया था, उसे शोभा देनेवाला जीवन वे कायम न रख सके । इसमें उनका कसूर नहीं । उनकी कर्मासे अितना ही साबित होता है कि वे और अिन्सानोंके

जैसे ही गिरावटके लायक थे । इसीसे हम धर्मशास्त्रके नामसे पहचाने जानेवाले ग्रंथोंमें सङ्गठन घुसी हुआ देखते हैं । इसीसे हम यह दुख-दायी दृश्य देखते हैं कि जिन ब्राह्मणोंने अपने लिये निहायत बेगरज कायदे बनाये हैं, अन्हींने अपनी औलादके लिये शास्त्रकी स्वार्थी आज्ञाओं रची हैं । लेकिन सङ्गठनके खिलाफ और स्वार्थसे घुसेड़ी हुई बादकी बातोंके खिलाफ बलवा करनेवाले भी ब्राह्मण ही थे । अन्हींने बार बार अपने और समाजके पाप धो डालनेकी कोशिश की हैं । मैं मंजूर करता हूँ कि मेरे मनमें ब्राह्मणपनके लिये भारीसे भारी पूज्य भाव है और ब्राह्मणोंके लिये अटल अिज्जत है । और यह देखकर मुझे दुःख होता है कि ब्राह्मण कहलानेवाला लोग जिस सुधारके आन्दोलनके खिलाफ धांधली मचा रहे हैं और अपनी शक्तियों विरोधी पक्षमें लगा रहे हैं । फिर भी एक बातसे मुझे तसल्ली होती है और हरएक निष्पक्ष हिन्दूको तसल्ली होगी कि सुधारकी हलचलके नेताओंमें भी ऐसे लोग हैं, जो जन्मसे ब्राह्मण होकर भी जन्मका जरा घमण्ड नहीं करते । अछूत-पन मिटानेका काम करनेवाले सब सेवकोंकी गिनती की जाय, तो मुझे लगता है कि यह जान पड़ेगा कि किसी भी तरहका मेहनताना लिये बिना या सिर्फ पेट भर लेकर अपनी सारी शक्ति जिस हलचलमें ओंक देनेवाले सेवकोंमें बड़ा भाग ब्राह्मणोंका है ।

लेकिन मैं मानता हूँ कि ब्राह्मणोंका अवनान हुआ है । वेता न होता और वे अपने आदर्श तक पहुँच होते, तो हिन्दूधर्मका आज जा अवनति हुई है, वह न हुआ होती । यह कहना कि ब्राह्मणोंने शुद्ध-जीवन रखा है, फिर भी हिन्दूधर्म आज जिस हालतमें आ पड़ा है, एक दूसरीसे खुरदी बात समझी जायगी । ऐसा हो ही नहीं सकता, क्योंकि ब्राह्मणोंने खुद ही हमें सिखाया है कि वे खुद ब्रह्मज्ञानके सच्चे रख-वाले हैं । और जहाँ ब्रह्मज्ञान है वहाँ डर नहीं, गरीबी नहीं, कंगाली नहीं, वहाँ भूचनीचका भाव नहीं, वहाँ लालच, घमण्ड, फूट और लूट जैसी चीजें नहीं । ब्राह्मणपनकी अवनतिके साथ ही दूसरे वर्णके हिन्दू भी नीचे गिर गये । और मेरे मनमें ज़रा भी शक नहीं कि ब्राह्मणपन फिसे जिन्दा न हुआ, तो हिन्दूधर्म मिट जायगा । और अछूत-

पनका जड़ मूलसे मिटना, मेरी समझसे, ब्राह्मणपनके यानी हिन्दूधर्मके फिरसे जिन्दा होनेकी अचूक कसौटी है। जैसे जैसे मैं हिन्दू धर्मशास्त्रोंका ज्यादा अध्ययन करता जाता हूँ और सही तरहके ब्राह्मणोंके साथ चर्चा करता जाता हूँ, वैसे वैसे मेरा यह यकीन बढ़ता जाता है कि अछूतपन हिन्दू धर्मपर बड़ेसे बड़ा कलंक है। इस यकीनकी बहुतसे विद्वान ब्राह्मणोंने तात्कीद की है। इन विद्वानोंका इसमें कुछ भी स्वार्थ नहीं है। वे सच्चाईकी खोज करनेके लिये जुझनेवाले हैं। उन्हें इसमें से कुछ मिलता नहीं; अपनी रायके लिये उन्होंने धन्यवाद तक स्वीकार नहीं किया।

पर आज ब्राह्मण और क्षत्रिय, वश्य और शूद्र कोरे नाम ही रह गये हैं। जिस वर्णको मैं मानता हूँ, वह पूरी तरह संकर हो गया है। और पिछले अंकोंमें * वर्ण-धर्म पर अपने लेखमें कह गया हूँ कि मैं चाहता हूँ कि आज तमाम हिन्दू स्वेच्छासे शूद्र नाम धारण कर लें। ब्राह्मणपनमें रहनेवाली सच्चाईका दुनियाका दर्शन कराने और वर्णधर्मका सच्चा स्वरूप जिदा करनेका यह अंक ही रास्ता है। सब हिन्दुओंके शूद्र माने जानेसे ज्ञान, शक्ति और सम्पत्ति मिट नहीं जायगी, बल्कि वे सब अंक संप्रदायकी सेवामें काम न आकर सच्चाई और मानव जातिकी सेवामें काम आयेंगी। कुछ भी हो, अछूतपनके खिलाफ लड़ाई चलानेमें और इस लड़ाईमें अपना हीम देनेमें मेरी महत्वाकांक्षा सारे मनुष्य समाजकी कल्याणलट देखने की है। यह मेरा सपना हो सकता है, सीपमें बाँधी देखने जैसा कोरा भ्रम भी हो सकता है। जब तक यह सपना चल रहा है, तब तक मेरे मनमें तब खाली भ्रम नहीं है। और रोमों रोमोंके शब्दोंमें कहूँ, तो 'जीत' शब्द तक पहुँचनेमें नहीं, बल्कि उसके लिये अधिक साधना करनेमें है।'

‘हरिजनबन्धु’ ता० २६-४-’३३

* देखिये ४८वें पन्नेका लेख

ब्राह्मण क्या करे ?

१

अक महाराष्ट्री भाभी लिखते हैं :

“अक अषेड बुमके भाभी, जिन्होंने कॉलेजकी पढ़ाबी को है और अभी बेकार हैं, मुझे लिखते है :

‘दिन बहुत खराब आये हैं। मैं पढ़ा हुआ हूँ। शरीरसे मजबूत हूँ। काम करनेकी मेरी शक्ति जरा भी कम नहीं हुई है। फिर भी लगभग साल भर होने आया, कहीं रोजगार नहीं मिलता। आजकल ब्राह्मण होना मानो पाप ही हो गया है। ब्राह्मण होनेके कारण ही नौकरी मिलना मुश्किल हो जाता है। आप लोग हरिजनोंका काम लेकर बैठे हैं। हरिजनोंका बेशक ऊँचा अंशअभिये, पर ब्राह्मणोंको दवाना कहाँका न्याय है? आपको खयाल नहीं होगा कि बड़े कुटुम्बका खर्च चलाना कितना कठिन है। जहाँ नौकरो दूँदिये, वहीं पूछते हैं — किस जातिके हो? ब्राह्मण बतायें तो फौरन पूछनेवाले भी आवाज बदल जाती है। क्या यह रवैया वाजिब है?’

“अैसे मौके पर क्या जवाब दिया जाय, कुछ सझना नहीं; क्योंकि जवाब सिर्फ ठीक होना ही काफी नहीं। मुझसे लिखनेवालेका आश्वासन भी मिलना चाहिये। आप क्या आश्वासन देंगे?”

मैं आशा रखता हूँ कि जो अनुभव अिस ब्राह्मणको हुआ, वैसा बहुतोंको नहीं होता होगा। अिसमें शक नहीं कि अेकको भी नहीं होना चाहिये। जो लायक है, उसे नौकरी मिलनी चाहिये। अिसमें जाति, वर्ण या धर्मका भेद न होना चाहिये। अिस देशमें जो अिस देशके हैं, अुन्हें नौकरी या धन्धा मिलना आसान होना चाहिये।

यह तो आदर्शकी बात हुई। हमारे देशमें अँचनीच वर्गोंके भावोंने जड़ जमा ली है। अिसलिअे गुणदोषकी जाँच करते वक़्त जाति, वर्ण, धर्म वर्गों की जाँच ज्यादा होती है। अिस कारण जहाँ ब्राह्मणको न

रखनेका आग्रह हो, वहाँ उसे न रखा जाय तो उसमें अचम्भेकी कोअी बात नहीं । हमारे पापके कारण, धर्ममें पैठी हुअी सङ्घर्षके कारण, अशुभ बातें होती ही रहेंगी । असलिये अिन्हें प्रायश्चित्तके तौरपर हमें सहन करना चाहिये ।

लेकिन जो जन्मसे ब्राह्मण हैं और ब्राह्मणका धर्म पालना चाहते हैं, वे नौकरी क्यों ढूँढ़ें ? ब्राह्मण होनेका दावा करनेवालेके लिये तो लोगोंमें ब्रह्मज्ञान फैलाकर गुजारेके लिये धर्मभावनावाले यजमानोंपर आधार रखना ही वाजिव है । नौकरी ढूँढ़नेवाले ब्राह्मणके लिये सच्चा आदवासन तो यही होगा कि वह अपना धर्म पाले । फिर उसके लिये निराशाका कारण ही नहीं रहेगा ।

में अुम्मीद रखता हूँ कोअी यह कहकर मुझे बुरा न बतायेगा कि वर्ण धर्म मिट गया, ऐसा कहनेवाला मैं आफतमें फँसनपर वर्ण धर्मका आसरा कैसे लेता हूँ । कारण, वर्ण धर्मके मिट जानेका यह अर्थ नहीं कि किसीको उसका पालन न करना चाहिये । वर्ण धर्मका माननेवालेके लिये तो अपनी तरफसे उस धर्मको पूरी तरह पालना ही ठीक है । अुक्त ब्राह्मण ब्राह्मण होनेका दावा करता है, उससे यही मालूम होता है कि वह खुद वर्ण धर्मको मानता है । असलिये मेरी तो यह सलाह है कि वह उसी धर्म पर चले और नौकरीका लालच छोड़ दें ।

अिस कठिन कालमें भी ब्राह्मणोंने व्यक्तिके नाते देशकी थोड़ी सेवा नहीं की है । दूसरोंके मुकाबले ब्राह्मणोंका त्याग झरूर अधिक है । लेकिन ब्राह्मणोंका अच्छेसे अच्छा त्याग तो नौकरी वगैरा सभी अर्थमात्रको छोड़ना है । ब्राह्मणके धर्मकी शान तां सिर्फ परमार्थमें ही है । ब्राह्मण अगर वर्ण धर्मका मर्म जानकर उसके मुताबिक चले, तो वर्ण धर्मका फिर आसानीसे अुद्धार हो सकता है । असलिये अुक्त ब्राह्मण और उसके जैसी हालतवाले दूसरे ब्राह्मणोंको मेरी सलाह है कि वे ब्राह्मणका धर्म पालनेकी योग्यता पैदा करें, उसके मुताबिक अपना बर्ताव रखें और अर्थलाभका लालच छोड़ दें ।

('ब्राह्मण क्या करे ? ') मेरे जिस लेखपरसे असली लिखने-वाले महाराष्ट्री भाभी दुबारा लिखते हैं :

“मुझे आदरके साथ बताना चाहिये कि ‘ब्राह्मण क्या करे ?’ जिस शीर्षकसे आपने जो जवाब लिखा है, उससे मेरा समाधान नहीं हुआ । मुझे पत्र लिखनेवाले भाभी आदर्श ब्राह्मण होनेका दावा करते ही नहीं । यह बात तो मिट नहीं सकती कि वे जातिसे ब्राह्मण हैं । मान लीजिये कि अन्नकी जगह में ही हूँ । मुझे ब्राह्मणका धर्म खास तौरपर पालनेका भुत्ताह नहीं । जन्मसे हिन्दू हूँ और हिन्दू ही रहना चाहता हूँ । जन्मसे ब्राह्मण होकर हिन्दू रहते हुये मुझसे अब्राह्मण तो हुआ नहीं जायगा । मैं जानता हूँ कि हमारे यहाँ ब्राह्मणोंके हर्षमें जब दुश्मन थी, तब धार्मिक प्रतिष्ठा और राजनीतिक असरके कारण ब्राह्मण अधर अधर जम गये । अंग्रेजों राज के यम होनेके बाद भी समय पाकर बुद्धिके जोरसे ब्राह्मण सरकारी नौकरियोंमें और बुद्धिजीवी धन्योंमें आगे आये । यह सब मैं समझता हूँ । जब तक मैं यह समझता न था, तब तक मान लीजिये कि मैंने अपनी जातिके जवानोंकी शिक्षामें ही अपनी सारी कमाबी भी खर्च कर दी । आज मुझे उसका पछतावा होता है । जिसके लिये मैं प्रायश्चित्त करनेको भी तैयार हूँ । मैं यह भी स्वीकार करता हूँ कि जहाँ मेहनत कम और कमाबी ज्यादा हो, अन्न धन्योंमें अब्राह्मणोंको ही ज्यादा जगह मिलनी चाहिये । पर मैं कितना ही प्रायश्चित्त करूँ, तब भी मुझे अपने बड़े कुटुम्बका पालन तो करना ही पड़ेगा । मैं दिनभर बेगार करूँ, पर मुझे डेढ़सौ-दोसौ रुपयेकी जरूरत है । तब मुझे क्या करना चाहिये ? धर्म भावनावाले यजमान मुझे सम्हालनेके लिये कहा . तैयार हैं ? और ब्रह्मज्ञानके प्रचारका धन्या मैं किस तरह कर सकता हूँ ? मैं तो मामूली नागरिक हूँ । मामूली आदमियोंको ब्रह्मज्ञानकी क्या पडो ? वर्ण धर्म कायम हो, तो मैं जरूर खुश होऊँ । पर तब तक मेरे गुजारेका क्या हो ? मैं ब्राह्मण होनेके कारण कोभी खास लाभ नहीं माँगता । ब्राह्मण होनेके ही कारण मुझे सरकारी या म्यूनिसिपैलिटी-जैसी सार्वजनिक संस्थाकी नौकरी न मिले या जिसमें मुश्किल पैदा हो, तो जिसका अिलाज क्या है ? यह सब मैं अपने मित्रकी तरफसे नहीं लिख रहा हूँ । पर बहुतसे ब्राह्मण जो बात करते हैं, उसका सार मैंने यहाँ दिया है । आप ठीक समझें तो जिस हालतकी चर्चा कीजिये । ”

अस खतपरसे बहुतसे प्रश्न खुटते हैं । ऐसी बात नहीं कि ब्राह्मणको जो अड़चन होती है, वह दूसरोंको नहीं भोगनी पड़ती । आज किसी न किसी बहाने सभीको नौकरी मिलनेमें थोड़ी बहुत मुश्किल होती ही है । आज तक ब्राह्मणोंको नौकरी आसानीसे मिल सकी है । अब ऐसा नहीं होता । इसमें शक नहीं कि ब्राह्मणोंकी जो हालत आज हो गयी या होती दीखती है, वैसी थोड़े साल पहले औरोंकी थी । जहाँ जातियाँ होंगी, वहाँ ऐसे चढ़ाव उतार आते ही रहेंगे । इसलिये किसीको सन्तोष देनेवाला आश्वासन देना मुश्किल है ।

यह विचारने लायक है कि अस अड़चनकी जड़में एक चीज है । नौकरीकी संख्या हमेशा मर्यादित ही रहेगी । समयके साथ उसके लिये उम्मीदवारोंकी तादाद बढ़ती ही रहेगी । इसलिये सीधा रास्ता यही जान पड़ता है कि लोग नौकरी छोड़ना सीखें, दूसरे धन्धोंकी तरफ मुड़ें और उनकी योग्यता पैदा करें । ऐसा फेरबदल करनेमें बीचके समयमें तकलीफ जरूर होगी, लेकिन फल अच्छा निकलेगा । दूसरे देशोंमें ऐसा अनुभव हुआ है और जो लोग आज तक नौकरी करते थे, वे अब धन्धोंमें लग गये हैं ।

दूसरी बात ध्यानमें रखनेकी यह है कि खर्च कम करना चाहिये, अपनी और कुटुम्बकी जरूरतें घटानी चाहिये । जीवन सादा करनेकी जरूरत दिन दिन सारी दुनियाँमें ज्यादा ज्यादा साफ होती जा रही है । अस मतलबकी एक अंग्रेजी कहावत है — ‘सादा जीवन और ऊँचे विचार’ । हिन्दुस्तानमें तो सादगी एक अच्छा गुण ही नहीं, बल्कि धर्मका अंग है ।

कुटुम्बकी स्त्रियोंको भी घर खर्चमें अपना हिस्सा भरनेकी जरूरत है । मजूर वर्गकी औरतें घरका कामकाज करते हुअे भी कुछ न कुछ मजूरी करके कमाती हैं । दूसरी औरतें भी ऐसा क्यों न करें ! एक घरमें कमानेवाला एक और खानेवाले बहुत हों, तो उस पर गैरवाजिब बोझा पड़े बिना नहीं रह सकता । इसलिये जिन ब्राह्मणोंको नौकरी मिलनेमें मुश्किल आती है, उन्हें अस सूचनापर भी विचार करना चाहिये ।

‘हरिजनबन्धु’ ता० १७-९-’३३

क्षत्रियका धर्म

काठियावाड़-राजपूत-परिषद होनेवाली है । उसमें शरीक होनेकी मेरी बड़ी अच्छा है । मगर यह तो असम्भव ही है ।

काठियावाड़ बहादुरोंकी धरती थी । राजपूतोंकी वीरता दुनियाभरमें मशहूर है । लेकिन पुरानी बहादुरीकी तारीफसे आज राजपूत बहादुर नहीं हो सकते । ब्राह्मणोंने ब्रह्मज्ञान छोड़ा, राजपूतोंने रक्षाका धर्म छोड़कर बनियापन अपना लिया । बनिये गुलाम हो गये । फिर शूद्र सेवक न रहें, तो इसमें उन्हें कौन दोष दे सकता है ? चारों वर्ण गिर गये, इसलिये जिन चारोंसे पाँचवाँ धर्मविरुद्ध वर्ण पैदा हुआ और उसे अद्वैत माना गया । पाँचवेंको पैदा करके उसे दबाकर चार वर्ण खुद दबे और पतित हुये ।

जिस कठिन हालतमेंसे हिन्दुओंको कौन निकाले ? हिन्दू न बचें तो मुसलमान भी नहीं बच सकते । चलती रेलगाड़ीके पास हम खड़े नहीं रह सकते, क्योंकि उसकी तेज रफ्तार हमें खींच ले जाती है ।

जिस तरह हिन्दुस्तानके आज़ाद होनेका अपाङ्ग हिन्दुओंकी तरफ़कीमें है । हिन्दुओंकी अन्नति सिर्फ़ धार्मिक हो तभी हिन्दुस्तान बचेगा । हिन्दू पश्चिमके पशुबलकी नक़ल करने लगेंगे, तो खुद गिरेंगे और दूसरोंको गिरावेंगे ।

जिस गिरी हुआ हिन्दू दुनियाको कौन उठावे ? डरे हुओंको निडर कौन बनावे ? यह धर्म तो क्षत्रियका ही हो सकता है । इसलिये राजपूत परिषद अपना कर्तव्य समझना और पालना चाहे, तो उसे अपने धर्मका विचार करना होगा ।

बचावके लिये तलवारकी ज़रूरत नहीं । तलवारका जमाना गया या जाने ही वाला है । तलवारका अनुभव जगतने खूब कर लिया है । जगत अब तलवारसे तंग आ गया है । ऐसा लगता है कि पश्चिमको भी

बकान आ गयी है। मारकर बचाव करे वह क्षत्रिय नहीं, पर मरकर जो बचावे, वही क्षत्रिय है। भागे वह बहादुर नहीं, पर छानी खोलकर सामने खड़ा रहे, और घाव किये बिना घाव सहे, वह क्षत्रिय है।

पर घड़ीभर मान लीजिये कि तलवारकी आवश्यकता है। फिर भी क्या हुआ? रामने तलवार चलायी हो, तो उससे पहले वे चौदह वर्ष बनवास भुगतकर तपस्या करके शुद्ध हो लिये थे। पाण्डवोंने भी बनवास भोगा था। अर्जुनको ठेठ अिन्द्रके पास जाकर हथियार लाने पड़े थे। हथियारकी ताकतसे पहले तपका बल चाहिये। अगर ऐसा न हो तो गृहयुद्ध हो और जैसे यादवोंका खुद अपने ही हथियारोंसे नाश हुआ, वैसा ही हमारे हथियार हमारा नाश करें।

अिसलिअे राजपूत परिषदका पहला फर्ज आत्माकी अुन्नति करना है। राजपूत अपने हकोंकी बात तो करेंगे ही, पर पहले अुन्हें अपने धर्मकी बात करनी चाहिये। वे व्यसन छोड़ें, सादगी ग्रहण करें, गरीबसे गरीब काठियावाड़ीको पहचानें, उसके दुःखमें हिस्सा लें और उसकी सेवा करें। यह सेवा करनेका हक कोअी छीन नहीं सकता। काठियावाड़के किसी भी आदमीको काठियावाड़ छोड़ना पड़े, तो यह राजपूतके लिअं शर्मकी बात है। जहाँ चरखा है, पीअंजन है और करघा है, वहाँ रोजी तो है ही। काठियावाड़की अमृत जैसी हवा छोड़कर बम्बअीअी गलीअं हना खानेको काठियावाड़ी किस लिअे जाय? अिसका जवाब दूसरे काठियावाड़ी दें उसके पहले राजपूतोंको देना चाहिये? अिसका लांअंजन काठियावाड़के राजाओंपर ही है। काठियावाड़के राजा प्रजाकी भलाअीका ही खयाल करें, तो काठियावाड़की प्रजाको देशनिकाला किस लिअे लेना पड़े? राजपूत परिषदमें राजा तो होंगे नहीं; पर राजपूत धारें, तो राजा भी समझ जायँ। यह जमाना प्रजासत्ताका है। अिसलिअे जैसी प्रजा होगी, वैसे ही राजा भी होकर रहेंगे। प्रजाकी जाग्रतिमें राजपूत अच्छा हिस्सा ले सकते हैं।

दूसरोंके दोष निकालनेके बजाय परिषदके सदस्य अपने दोष निकालनेमें ज्यादा समय लगावेंगे, तो दूसरोंको आम रास्ता

दिखायेंगे । आजकल हम अपने दुःखोंके लिये दूसरोंकी बुराभी कात हैं । हम भूल जाते हैं या भूल जाना चाहते हैं कि अपने दुःखोंके लिये हम खुद ही जिम्मेदार हैं । जुल्म सहनेवाला न हो, तो जालिम क्या करे ? जब तक हम बसमें होनेकी कमजोरी रखेंगे, तब तक बसमें करनेवाले मिलते ही रहेंगे । बसमें करनेवालोंको गालियाँ देना आसान लेकिन बेकार है । अपनी कमजोरी ढूँढ़कर उसे दूर करना मुश्किल तो है, पर यही फल देनेवाला है । और यह कमजोरी दूर करनेका अिलाज हमारे ही पास होनेके कारण कोअी उसे छीन नहीं सकता ।

राजपूत परिषदके मेम्बरोसे मेरी अर्ज़ है कि वे इस विचारको मुख्य समझकर अपने दिलोंको देखें ।

अखीरमें अन्हें अपने तजरबेका सार बता दूँ । भाषणों और भाषण देनेवालोंसे डरियेगा । उनसे दूर रहना ही अच्छा है । मुँह बन्द करके काम करनेका ही तरीका रखा जायगा तो काम सुधरेगा । भूखेके दुःखको देखकर रोनेवाला भूखेकी भूख दूर नहीं कर सकता; लेकिन जन्मसे गूंगा कोअी साथ उसके पास एक मुट्ठी जवार ले जायगा, तो भूखेकी आँख चमक उठेगी, उसके चहेरे पर लाली लौट आयेगी और उसके होठों पर हँसी दिखायी देगी । उसकी अँतडियाँ उस गूंगेको दुआ देंगी । अीश्वर हमें भाषणोंसे सीख नहीं देता; वह सदा काममें लगा रहता है । हम सोते हैं, तब भी वह जागता रहता है । उसे अपने काममेंसे बोलनेका वक्त ही नहीं बचता । राजपूतोंसे मेरी प्रार्थना है कि वे काठियावाड़के दूसरे बकवासी राजनीतिक स्वयंसेवकोंको अपने आचरणसे शिक्षा दें ।

बेपारीका फर्ज

[धुलियाके बेपारियोंकी भेंट की हुआ थैये और मानपत्रके जवाबमें दिया हुआ भाषण महादेवभाभीके महाराष्ट्रका पत्रमेने । मानपत्रमें गांधीजीकी 'बनियेका बेदा' बताया गया था । असीका जिक्र करके गांधीजी शुरू करते हैं। — प्रकाशक]

“यह आपने मुझे याद दिलाकर ठीक किया कि मैं गरीब बनियेका बेदा हूँ । गरीब बनियेका बेदा बनकर ही मैं हिन्दुस्तानके गरीब लोगोंके लिअे अक वड़ा बेपार चला रहा हूँ । और बेपारके सिवाय गोरक्षा भी मेरा धन्धा होना चाहिये; अिसलिये गोरक्षाका धन्धा भी कर लिया है । . . . आज शुद्ध बेपार पूरी तरह मिट गया है । और अुसी तरह विवेकपूर्ण गोरक्षाका भी नाश हो गया है । और मैं अपनेको समझदार बनिया मनवाता हूँ, अिसीलिअे ये दो धन्धे आपके सामने पेश करता हूँ । मुझमें बनिया बुद्धि है, क्षत्रियपन भी है और थोड़ासा ब्राह्मणपन भी है । पर ये सब बातें छोड़कर मैं अिस सालके लिअे अेक कंजूस बनिया बन जाना चाहता हूँ । और अिस तरह अेक लोभी बनिया कौड़ी कौड़ीका हिसाब करता है, अुसी तरह आपसे मैं कौड़ी कौड़ीका हिसाब करना चाहता हूँ । अिसलिअे, आपने ४१००) दिये हैं और शायद कल तक ५०००) पूरा कर देंगे, फिर भी मेरा मन मुझे कहता ही रहेगा कि धुलियाके लोगोंने ज्यादा क्यों नहीं दिया ? यह बात नहीं कि मैं बनिया होनेके कारण और माँगता हूँ; पर मुझे लगता है कि हिन्दुस्तानको शूहने नहीं खोया, क्षत्रियने नहीं खोया, ब्राह्मणने नहीं खोया, बनियेने ही खोया है । और अगर कोअी वापस ले सकता है तो बनिया ही ले सकता है । अितिहासमें अैसी मिसालें मौजूद हैं, जिनमें बनिये घमण्डके साथ कहते हैं कि हमने सरकारकी मदद की, हमने जासूसी की और सरकारकी फलों सेवा की और अब सरकार हमारी मदद करे तो अच्छा । रमेशचंद्र दत्तने भी बताया है कि हिन्दुस्तान बेपारियोंके ज़रिये ही गया है ।

“बेपार करनेमें कोअी शर्मकी बात नहीं । बेपार ठीक तरहसे हो, तो अुसमें कुछ भी बेअिज्जती नहीं । अंग्रेज़ तो बेपारी बनकर ही आये थे । वे बेपारके लिअे क्षत्रिय बने । वे बेपारपर कायम हुअे अपने राजके बचावके

लिअे ब्राह्मण भी बने । वर्णाश्रम धर्म नहीं बताता कि बनिया ब्राह्मण न बने, अपनी मा बहनको बचानेके लिअे क्षत्रिय न बने । वर्णाश्रम धर्मके हिसाबसे तो बनियेके धर्मकी विशेषता बनियापन है, 'कृषिगोरक्षवाणिज्य'* है । अपना बेपार बढ़ानेके लिअे अंग्रेजोंने बेपारी होते हुअे भी अपनी बुद्धि, ज्ञान और बहादुरीको अेक साथ काममें लिया, और हम अुनकी शक्तिसे चकित होकर वर्ण धर्म भूलकर पागल बने, नामर्द बने, देशद्रोही बने और बनियेका सहज धर्म भूल गये । अब बाजी वकीलोंसे, डाक्टरोंसे, ब्राह्मणोंसे या क्षत्रियोंसे नहीं सुधरेगी । पर बनिये अपना धर्म पालें, देशके लिअे खेती, गोरक्षा और बेपार करें, तो ही सुधरेगी । यह आपके मानपत्रका मेरा जवाब है ।

“आपकी काली टोपियाँ, आपकी स्त्रियोंकी साड़ियाँ शर्मकी, गुलामीकी पोशाक है । लोगोंको ये टोपियाँ और साड़ियाँ देनेवाले बनिये हैं । आपको कंचे मालको बचाना है । अिसके बजाय आपने अुसका सौदा किया । अिसलिअे आज आपकी बुद्धि जड़ हो गभी है । आप मिलें खड़ी करते हैं, पश्चिमकी राक्षसी सभ्यताकी नकल करते हैं और लोगोंका कस खींच लेनेवाला सामान-पैदा करते हैं । अगर पश्चिमके लोग पूर्वके लोगोंको चूसना बन्द कर दें, तो अुनकी आधी मशीनें बन्द हो जायें । आप भी अिसी रास्ते जा रहे हैं । अगर आप स्वराजके लायक बनना चाहते हों, तो जिसे मैं झूठा बेपार कहता हूँ अुसे छोड़िये और सच्चा बेपार अपनाअिये । आपका सीधा सादा धर्म यह है ।

“भगवद्गीताका वैश्य करोड़पति बननेवाला नहीं, लेकिन देशको कुटुम्ब समझकर अुसकी भलाअीके लिअे अपने धर्मपर चलनेवाला है । थोड़ी बुद्धिको काममें लीजिये, थोड़ा विचार कीजिये और थोड़ा ब्रह्मचर्य पालिये, तो आपका फर्ज साफ़ समझमें आयेगा । आप अपना कर्तव्य समझने लगें, तो साठ करोड़का विदेशी कपड़ा आना बन्द हो जाय और ९ लाख चमड़े परदेश जानेसे रुक जायें । लेकिन आज तो आपसे आदर्श गोशाला बनानेको कहता हूँ, आदर्श चर्मालय खोलनेको कहता हूँ, तो आप नाक भौं सिकोड़ते हैं ।

* खेती, गोरक्षा और बेपार ।

“यह नहीं कि मैं साठ बरसका हो गया हूँ, तो मेरी बुद्धि मारी गयी है। पर मेरे साथ तो सैकड़ों जवान काम कर रहे हैं। मुझे पता नहीं, कितने वर्ष जीना है। मैं तो गंगाके किनारे बैठा हूँ। मैं किस लिअे किसी चीज़को झूठी समझकर सच्ची मनवानेकी कोशिश करूँ? आप मुझे समझावें कि मेरा काम झूठा है, तो आपके पैरोंमें बैठूँगा—जैसे परशुराम रामचंद्रजीके चरणोंमें बैठे थे। मेरा दिल जीतनेवाला कोअी भी शास्त्र मिल जाय, तो मैं उसे साष्टांग नमस्कार करूँ। लेकिन आप मुझे बुद्धि और दिलसे न जीत सकें, तो मेरा खादी और गोरक्षाका काम अपना लीजिये। अिसके बिना अुद्धार नहीं।”

ता० २७-२-२७

२०

शूद्रोंका हक

[मैसूरमें वहाँके संस्कृत विद्यालयने गांधीजीको बुलाकर संस्कृतमें मानपत्र दिया, अुसके लिअे धन्यवाद देते दुअे किया हुआ भाषण, महादेवभाओंके साप्ताहिक पत्रमेंसे।

— प्रकाशक]

“आपने मुझे संस्कृतमें मानपत्र देकर मेरी बर्डी अिज्जत की है। अिसके लिअे शुक्रिया अदा करता हूँ। मैं मानता हूँ कि हरअेक हिन्दू लड़के और लड़कीका संस्कृत जानना धर्म है; और हरअेक हिन्दूको अितनी संस्कृत आनी चाहिये कि ज़रूरत पड़नेपर वह अपने विचार संस्कृतमें बता सके।”

अितना कहकर गांधीजीने पण्डितोंके लिअे दो शब्द कहे :

“मुझे यह जानकर दुःख हुआ कि मैसूर राज्यमें शूद्रों और अछूतोंको संस्कृत सिखानेसे डरनेवाले या संस्कृत सिखाना पाप समझनेवाले पण्डित मौजूद हैं। मुझे मालूम नहीं कि अिसके लिअे शास्त्रमें कहाँ प्रमाण है कि शूद्रोंको संस्कृत सीखने यानी वेद पढ़नेका अधिकार नहीं। पर सनातनी हिन्दूकी हैसियतसे मेरी पक्की राय है कि अैसा कोअी प्रमाण हो भी, तो हमें अपने शास्त्रोंका अक्षरार्थ करके अुसके मर्मको नहीं मारना

चाहिये । जैसे अिन्सानके विकासका सिलसिला जारी रहता है, वैसे ही शब्दोंका विकास भी होता ही रहता है, और अगर किसी भी वेदकी बातका दिल और दिमागको न जँचनेवाला अर्थ किया जाता हो, तो वह छोड़ देने लायक है ।

“ अब मेरी समझसे हिन्दू धर्ममें अछूतपनके लिये कहीं भी जगह नहीं । और हिन्दुस्तानके बहुतसे हिस्सोंमें मैंने ऐसे बहुतसे अछूत देखे हैं, जो छूत भाजियोंसे बुद्धि या नीतिमें जरा भी हलके नहीं हैं । आज जिन ब्राह्मण लड़के लड़कियोंने संस्कृतके श्लोक सुनाये, अतना ही शुद्ध शुच्चारण करनेवाले आदिकर्णाटक लड़के तो मैंने मैसूरमें बहुत देखे हैं । इसलिये मैं जोरके साथ माननेवाला हूँ कि अछूतपनके लिये हिन्दूधर्ममें किसी भी कारणसे जगह नहीं हो सकती । फिर भी, आपने मुझे विद्यालयमें बुलाकर मान दिया और मेरे विचारोंके साथ हमदर्दी दिखायी, उसके लिये मैं आपका आभारी हूँ ।

“ यहाँ कभी ब्राह्मण तकली चला रहे हैं; यह देखकर मुझे बड़ी खुशी होती है । लेकिन मैं यह चाहता हूँ कि इस तकलीके सूतसे जनेअू बनाकर ही आप लोग सन्तोष न मान लें । जनेअू तो इसी सूतसे बनाजिये; पर अपने कपड़े भी इसी सूतके बनवाकर पहनेंगे, तभी आपके धर्मकी शोभा होगी । इस विद्यालयमें आकर विदेशी कपड़े पहने हुअे लड़के लड़कियोंको संस्कृत श्लोक बोलते देखकर मुझे तो बड़ा रंज हुआ । मुझे यह बहुत बुरा लगा । बाहरके बर्तावमें धर्मका रहस्य नहीं है, पर बाहरसे बहुत बार भीतरकी चीज जाहिर हो जाती है । इसलिये जब जब मैं संस्कृतकी पाठशालाओंमें जाता हूँ या जिन संस्थाओंमें आर्योंकी विद्या पढ़ायी जाती है वहाँ जाता हूँ, तभी मैं हमारे पुराने ऋषियोंके सादा और पवित्र वातावरणके दर्शन करनेकी आशा रखता हूँ । मुझे अफसोस है कि यहाँ मैं वह दर्शन नहीं कर सका । और मैं शिक्षकों और बच्चोंके माबापोसे प्रार्थना करता हूँ कि वे यहाँ पढ़नेवाले बच्चोंको आर्योंकी संस्कृतिके लायक खादी पहनावें । ”

हज्जाम या 'वाळंद' ?

अेक भाभी पालीताणासे लिखते हैं :

“आप ‘वाळंद’ शब्दके बदले ‘हज्जाम’ शब्द काममें लेते हैं । काका कालेलकरने मान्यवर श्री धर्मानन्द कोसंबीकी ‘आपबीतो’ नामकी मराठी पुस्तकके तर्जुमेमें ‘वाळंद’ शब्द अिस्तेमाल किया है, और दूसरी जगह भी वही शब्द काममें लेते हैं । अिसी तरह गुजराती भाषामें आम तौरपर ‘वाळंद’ शब्द ही काममें लिया जाता है ।

“‘हज्जाम’ शब्द अिस्तेमाल करनेसे समाज नाभीको हल्की नजरसे देखता है; और बहुत बार कितने ही भाथियोंकी तरफसे गुन्हें अिस्के लिये अपमान भी सहना पड़ता है । और फिर दूसरे लेखक भी बहुत कुछ आम्की नकल करते हैं । विचारलिये आंगेके लिये तो सुधार बहुत ही जरूरी है । हो सके तो द्रुप करके नवजीवनके जरिये सुधार आहिर कीजिये, ताकि गरोब कौमका भला हो ।”

हज्जाम शब्दके अिस्तेमालमें जो हल्कापन है, वह असलमें धन्धेके लिये है । हज्जाम शब्द अुनके लिये है, जिनका धन्धा बाल काटनेका है । वह अच्छा न लगे तो में नवजीवनमें ‘वाळंद’ शब्द ही काममें लूँगा । लेकिन मेरी पक्की राय है कि अिससे असली रोग दूर नहीं होगा । सच्चा अुपाय तो यह है कि जो जो जरूरी मगर मैला साफ करनेवाले धन्धे हैं, अुन धन्धोंके लिये नफ़रत दूर की जाय; फिर नाम कुछ भी रखा जाय, अिस बारेमें हम अुदासीन रह सकते हैं । ‘नाम धरावे हेते हरि बालपनेमें जाय मरी’—अिसका हम क्या करें ? अिससे हम ‘हरि’ शब्दका तिरस्कार नहीं करेंगे । शब्दोंकी प्रतिष्ठा मनुष्यकी प्रतिष्ठाकी तरह बढ़ती घटती रहती है और रहेगी ।

अिस सुधरे हुए ज़मानेमें तो सब अपनी अपनी हजामत करना सीख रहे हैं, अिसलिये ‘वाळंद’के धन्धेमें जो हल्कापन है, वह अपने आप

निकल जायगा । कुछ कुछ निकल भी गया है । मेरे दिलमें 'वाळंद', भंगी, चमार, ढेढ़ वगैरा शब्दके लिये कुछ भी नफरत नहीं रही । मैं तो यह सब धन्धे करता हूँ, दूसरोंको करनेकी प्रेरणा देता हूँ और ऐसा करनेमें मुझे आनंद होता है । उक्त धन्धे करनेवाले भाषियोंको मेरी सलाह है कि वे यह भूल जायँ कि इस धन्धेके लिये समाजमें नफरत है । और वे इन धन्धोंमें होशियार होकर, अपना आचार-विचार शुद्ध करके उन धन्धोंकी और अपनी अिज्जत बढ़ावें । इसी गरजसे, हालांकि मुझे अपनी हजामत अच्छी तरह बनाना आता है तो भी जहाँ कहीं खादी पहननेवाला नाभी मिल सकता है, वहाँ उसे तकलीफ देता हूँ और उसे देशसेवामें लानेकी कोशिश करता हूँ । हमें शुद्ध स्वराज्य लेना है, इसीलिये ऐसे धन्धे करनेवाले सभी लोगोंकी मददकी और सुधारकी जरूरत है । हमारे यहाँ चमार, जुलाहे, मोची और ढेढ़ वगैरा ज्ञानी भक्त हो चुके हैं । तो फिर उनमेंसे कोई अपनी सेवाके बलपर राष्ट्रपति हो जाय तो क्या बड़ी बात है ? ऐसा धन्धा करनेवाला अपना आचरण बिल्कुल शुद्ध रख सकता है और इस तरह अपनी बुद्धि तेज कर सकता है । दुःख यह है कि ऐसा धन्धा करनेवाले बुद्धिशाली निकलते हैं, तो उन्हें अपने धन्धेसे शर्म आती है और अखीरमें वे उसे छोड़ देते हैं । मेरे खयालका राष्ट्रपति 'वाळंद' या मोचीके धन्धेसे गुजर करते हुये भी राष्ट्रकी बागडोर सम्हालता रहेगा । यह हो सकता है कि राष्ट्रके कामके बोझके कारण वह अपने धन्धेको पूरी तरह न कर सके । लेकिन यह तो अलग सवाल है ।

निजी मेहनत

१

(सत्याग्रह आश्रमकी नियमावलीमेंसे)

“ अस्तेय और अपरिग्रहके पालनके लिये खुद मेहनत करनेका नियम जरूरी है । जिसके सिवा, सभी आदमी अपना गुजर शरीरकी मेहनतसे करें, तभी समाजकी और अपनी दुश्मनी करनेसे बच सकते हैं । जिस औरत या मर्दके हाथ पैर चलते हैं और जिसमें समझ आ गयी है, उसे अपना रोजका खुदके निपटाने लायक 'सब काम कर लेना चाहिये और दूसरेकी सेवा बिना कारण नहीं लेनी चाहिये । लेकिन बच्चोंकी, दूसरे अपंग लोगोंकी और बूढ़े स्त्री-पुरुषोंकी सेवाका मौका आ जाय, तो उसे करना सामाजिक जिम्मेदारी समझनेवाले हर अन्सानका फर्ज है ।

“ जिस आदर्शको सामने रखकर आश्रममें मजूर तभी रखे जाते हैं, जब उनके बिना काम नहीं चलता । और उनके साथ मालिकनोंकर-सा बर्ताव नहीं किया जाता । ”

२

(अपर लिये 'व्रत'को समझानेवाला 'मंगल प्रभात'का प्रकरण)

अंग मेहनत मनुष्य मात्रके लिये लाजिमी है, यह बात पहले पहल पूरी तरह मेरे मनमें टॉल्स्टॉयके एक निबन्धसे बैठी । अतनी साफ़ तौरपर जाननेसे पहले ही मैं जिस बातपर अमल तो करने लग गया था — रस्किनके 'अण्ड धिस लास्ट' या 'सर्वोदय'को पढ़नेके बाद तुरन्त ही । खुद मेहनत अंग्रेज़ीके 'ब्रेड लेबर'शब्दका अनुवाद है । 'ब्रेड लेबर'का शब्दशः तर्जुमा रोटी (के लिये) मजूरी है । यह भीखरी नियम है कि रोटीके लिये हरएक अन्सानको मजूरी करनी चाहिये और हाथ पैर हिलाना चाहिये । जिसकी खोज टॉल्स्टॉयने पहले पहल नहीं की, बल्कि

अनुसे बहुत कम जाने हुअे रूसी लेखक बुर्नेहिने की थी । अउसे टॉल्स्टॉयने मशहूर किया और अपनाया ।

अिसकी: झोंकी मुझे भगवद्गीताके तीसरे अध्यायमें मिलती है । यज्ञ न करनेवालेके लिअे अितना कड़ा शाप है कि जो यज्ञ किये बिना खाता है, वह चोरीका अनाज खाता है । यहाँ यज्ञका अर्थ खुद मेहनत या रोटीमजूरी ही अच्छा लगता है । और मेरी रायसे यह अर्थ हो भी सकता है । कुछ भी हो, हमारा व्रत अिस तरहसे पैदा हुआ है । बुद्धि भी हमें अिसी चीजकी तरफ़ ले जाती है । जो मजूरी न करे, अउसे खानेका क्या हक ? बाअिबिल कहती है : ' तू अपनी रोटी पसीना बहाकर कमाना और खाना । '

करोड़पति भी अगर अपनी खाटपर पड़ा रहे और अउसके मुँहमें कोअी डाले तभी खाय, तो वह बहुत समय तक नहीं खा सकता; अउसमें अउसे रस भी नहीं रहेगा । अिसलिअे वह कसरत वगैरा करके भूख लगाता है और खाता है, तो अपना ही हाथ-मुँह हिलाकर । अगर अिस प्रकार कुछ न कुछ कसरत राजा और रंक सबको करनी ही पड़ती है, तो फिर यह सवाल अपने आप खड़ा होता है कि रोटी पैदा करनेके लिअे ही सब कसरत क्यों न करें ? किसानको हवा खाने या कसरत करनेके लिअे कोअी नहीं कहता । और दुनियाके नव्वे फी सदीसे भी ज्यादा आदमियोंका गुजर खेतीसे होता है । अिनकी नकल बाकीके दस फी सदी लोग करें, तो जगत्में कितना सुख, कितनी शान्ति और कितनी तन्दुरुस्ती फैले ? और खेतीके साथ बुद्धि मिल जाय, तो अउसके साथ लगी हुअी बहुतसी अड़चनें कम हो जायँ ।

दूसरे, खुद मेहनतके अिस निरपवाद क़ानूनको सब मानें, तो अँचनीचका मेद मिट जाय । आज तो जहाँ अँचनीचकी गन्ध भी नहीं थी वहाँ, यानी वर्णव्यवस्थामें, भी वह पैठ गयी है । नौकर मालिकका फर्क सब जगह फैल गया है, और गरीब अमीरको फूटी आँखसे भी देख नहीं सकता । अगर सब रोटीके लायक़ मजूरी करें, तो अँचनीचका मेद जाता रहे; और फिर भी धनिक वर्ग रहेगा, तो

वह अपनेको धनका मालिक नहीं बल्कि उसका सिर्फ रखवाला या ट्रस्टी समझेगा और उसको खासकर लोगोंकी सेवामें ही लगायेगा । जिसे अहिंसाका पालन करना है, सचाभीकी पूजा करनी है, ब्रह्मचर्यको स्वाभाविक बनाना है, उसके लिये तो खुद मेहनत रामबाण हो जाती है ।

असलमें तो ऐसी मेहनत खेती ही है । लेकिन अभी तो यह हालत है ही कि सब अिसे नहीं कर सकते । अिसलिअे खेतीका आदर्श ध्यानमें रखकर अिन्सान खेतीके अेवजमें भले ही दूसरी मजूरी करे — जैसे कताअी, बुनाअी, सुतारी, लुहारी वगैरा वगैरा ।

सबको अपना भंगी तो खुद ही बन जाना चाहिये । जो खाता है, वह मैला तो करता ही है । अिसलिअे यही सबसे अच्छा है कि जो मैला करे, वही उसे गाढ़े । यह न बन पड़े तो सारा कुटुम्ब अपना कर्त्तव्य करे । मुझे बरसोंसे लगता है कि जहाँ भंगीका जुदा काम सोचा गया है, वहाँ कोअी बड़ा दोष घुस गया है । हमारे पास अिसका अितिहास नहीं कि अिस जरूरी और सेहतको बचानेवाले कामको हल्केसे हल्का पहले पहले किसने माना होगा । जिसने माना उसने हमारी भलाअी तो हरगिज्ञ नहीं की । यह भावना हमारे दिलमें बचपनसे ही ठँसनी चाहिये कि हम सब भंगी हैं; और अिसे ठँसानेका सहजसे सहज अुपाय यह है कि जो समझ गये हैं, वे खुद मेहनतकी शुरूआत पाखाना सफ़ाअीसे करें । जो अिस तरह समझकर करेगा, वह उसी वक्तसे धर्मको अलग अर्थमें और सच्ची तरहसे समझने लगेगा ।

बच्चे, बूढ़े और रोगसे अपंग हुअे लोग मजूरी न करें, तो अिसे कोअी रियायत न समझे । बच्चे माँमें शामिल हैं । अगर कुदरतका कानून न टूटे, तो लोग बूढ़े और अपंग न हों और बीमारी तो हो ही किस लिये ?

भिखारी साधु

शायद ऐसा माना जायगा कि भिखारी शब्दका प्रयोग साधुका विरोधी है। मगर आजकलके साधुका मतलब है गेरुअं कपड़े पहननेवाला; फिर उसका दिल गेरुआ हो, साफ हो या मैला हो। साधु शब्दका सच्चा अर्थ दिलका साधु या पवित्र ही है। पर ऐसे साधु तो मुश्किलसे ही पहचाने जाते हैं। हाँ, भगवे कपड़ेवाले असाधु साधु सीख माँगते जरूर नज़र आते हैं। जिसलिअे ऐसे भिखमंगोंके लिअे भिखारी साधुका अस्तिमाल किया गया है। असोंके लिअे ही अेक भाअी लिखते हैं :

“आप चरखेके जरिये कभी काम कर लेना चाहते हैं। सब धर्म-वालेंकी अकृता करने और अँचे नीचे माने जानेवाले वर्णोंका भेदभाव मिटानेका काम भी चरखेके जरिये साधना चाहते हैं। यह सब बहुत अच्छा है। पर आजकल शक्ति होते दुअे भी आलसी हो जानेके कारण भोख माँगनेवालोंकी तादाद हिन्दुस्तानमें बढ़ गयी है। अिन्हें आप चरखा क्यों नहीं बताते? अैसी अेक संस्था क्यों नहीं बनाते, जिसमें कोअी भी भिखारी कुछ न कुछ मेहनत करके हो खा सके? अैसी संस्था हो तो जिनमें दान देनेकी शक्ति है, वे दान देनेके बजाय अिस तरहके आश्रमों पर चिट्ठी दें और अैसे लोगोंकी काम और खुराक वहीं मिले।”

यह सूचना तो बढ़िया है, पर अिसपर अमल कौन करेगा? गरीब लोगोंमें चरखा फैलानेमें जितनी मुश्किलें आती हैं, उससे कहीं ज्यादा मुश्किल भिखारी साधुओंमें चरखा फैलानेमें है। अिसमें धर्मकी भावना बदलनेकी बात आ जाती है। आज धनवान लोग ऐसा मानते हैं कि झोलीवालेकी झोलीमें थोड़ेसे पैसे डाले कि परोपकार हो गया, पुण्य हो गया! अिन्हें कौन समझावे कि अैसा करनेमें भलाअीके बजाय बुराअी होती है, धर्मके नामपर पाप होता है और पाखण्ड पनपता है? छप्पन लाख साधु कहलानेवाले लोगोंमें सेवाभाव आ जाय और वे मेहनत करके ही रोटी खाँयें, तो हिन्दुस्तानको स्वयंसेवकोंकी जबरदस्त फ़ौज मिल जाय। गेरुआ पहननेवालोंको यह बात समझाना करीब करीब नामुमकिन है।

अनुमें तीन तरहके लोग हैं । बहुत बड़ा भाग पाखण्डी है, जो सिर्फ आलसी रहकर ही मालपुत्रे खाना चाहता है । दूसरा वर्ग जड़ है । वह ऐसा कुछ मानता है कि भगवा कपड़ा और मेहनत दोनोंमें मेल बैठ नहीं सकता । तीसरा भाग बहुत छोटा है, जो सचमुच त्यागियोंका है, लेकिन जिन्हें लम्बे असेंकी आदतके कारण ऐसा लगता है कि संन्यासी दूसरोंकी भलाभीके लिसे भी मेहनत नहीं कर सकते । अगर यह आखिरी छोटा हिस्सा मेहनतकी कीमत समझ ले और जितना भी समझ जाय कि पिछले युगोंमें जो कुछ भी हुआ हो, जिस जमानेमें तो संन्यासियोंको अुदाहरणके तौर पर ही सही, मेहनत करना जरूरी है, तो दूसरे दोनों वर्गोंको भी समझाया जा सकता है । मगर जिस वर्गको समझाना बहुत ही कठिन काम है । यह काम धीरजसे और तभी होगा जब जिस वर्गको तजुर्बा होगा । जिसका मतलब यह हुआ कि जब चरखेका हिन्दुस्तानमें बोलबाला हो जायगा, तब यह वर्ग अुसकी शरणमें आयेगा । चरखेका बोलबाला यानी हृदय-साम्राज्य और हृदय-साम्राज्य यानी धर्मकी बढ़ती । धर्मकी बढ़ती होनेपर संन्यासियोंका यह छोटासा वर्ग अुसे पहचाने बिना नहीं रह सकता ।

जितनी मुश्किल संन्यासी वर्गको समझानेमें है, लगभग अुतनी ही धनिक वर्गको समझानेमें है । धनी लोग अपना धर्म समझ जायें, आलस्यको अुत्तेजन न दें और भिखारीको खाना न देकर काम ही दें, तो चरखेका बोलबाला आज ही हो जाय । लेकिन अमीरोंसे ऐसी अुम्मीद कैसे रखी जा सकती है ? धनी लोग खुद ज्यादातर और आम तौरपर आलसी होते हैं; और आलसको अुत्तेजन तो देते ही हैं । अनुसे जाने अनजाने भी आलसी भिखमंगोंको बढ़ावा मिल जाता है । जिस तरह लेखकने सुझाव तो अच्छा ही रखा है, लेकिन यह नहीं सोचा कि अुसपर अमल करना कितना कठिन है । मेरे कहनेका मतलब यह नहीं है कि काम कठिन है, जिसलिसे हम कोशिश ही न करें । कोशिश तो हमें करते ही रहना चाहिये । अेक भी धनवान समझकर आलसीको दान देना छोड़ दे और अेक भी भिखारी साधु, जो अपंग नहीं है, मेहनत किये बिना न खानेकी प्रतिज्ञा कर ले, तो अुतना ही हिन्दुस्तानका फायदा है । जिसलिसे

जहाँ जहाँ ऐसी कोशिश हो सके, वहाँ वहाँ करनी ही चाहिये । मुश्किलोंको ध्यानमें रखनेसे अितना ही होगा कि फौरन फल न मिलने पर निराशा न होगी और हम यह न मान बैठेंगे कि कोशिश करना ही बेकार है ।

ता० १-८-'२६

२४

‘साधुओं’की तकलीफ

पूछनेवालेका भेक सवाल यह है :

“साधुओंका जुल्म आप जानते हैं ? हैदराबादमें भेक साधुने जुल्मसे रुपया बैठनेकी कोशिश की । गुजरातके गाँवोंमें भी ऐसे साधु गाँव गाँव जाकर बड़ा दुःख देते हैं और गरीब लोगोंसे जबरदस्ती करके सौपचास रुपयेकी रकम अपने खाने — मिठाईके लिअे निकलवा लेते हैं । यह तो अच्छा हुआ कि हैदराबादमें पुलिस थी । गाँवोंमें पुलिस कहाँसे लावे ? इस बारेमें गाँवोंके लोगोंको जरूर लिखिये कि वे ऐसे साधुओंसे डरें नहीं, और खुन्हें रुपया देने या खिलानेमें कुछ भी पुण्य नहीं है ।”

अस तरह लोगोंको सतानेवाले साधु कहलानेके हकदार नहीं । मेससे भुलावेमें आनेवाला यह देश गेरुआ कपड़े पहननेवाले या सिर्फ लंगोटीसे काम चला लेनेवाले लोगोंके चक्करमें आकर खुन्हें साधु समझकर पूजता है । मेससे कोअी साधु नहीं हो जाता । साधुके मेसमें हजारों असाधु अस देशमें भटकते फिरते हैं । साधुके रूपमें दीखनेवालों या सचमुच असाधु जाहिर हो जानेवालोंसे गाँवोंके लोगोंको डर जानेका कुछ भी कारण नहीं । गाँवोंके लोगोंमें साधुको पहचाननेकी शक्ति आनी चाहिये और दुष्ट लोगोंका डर छोड़ना चाहिये । वहम और डर अिन दोनों दुःस्मनोंको गाँवसे निकाल बाहर करनेके लिअे पढ़ेलिखे वर्गको गाँवोंमें घुसनेकी जरूरत है । सरदार वल्लभभाजीने सारे हिन्दुस्तानको गाँवोंमें घुसनेका आम रास्ता बताया है । ऊपरके जैसे बहुतेरे काम अस समयके रचनात्मक कामोंके सिलसिलेमें बारडोलीमें होंगे और जनता नये पदार्थपाठ सीखेगी ।

ता० २-९-'२८

दीक्षा कौन ले ?

जावरा रियासतमें गुलाबबाजी नामकी अेक ओसवाल सुहागिन है । उसने हिन्दीमें अेक परचा छपवाकर बँटवाया है । उसपरसे मालूम पड़ता है कि उसके पतिने, जो छोटी अुम्रका है, दीक्षा लेनेके अिरादेसे घर छोड़ा है और अपनी सोलह बरसकी स्त्रीपर अिस तरहका खत लिखा है : “ करीब दो सालसे मेरा दीक्षा लेनेका विचार है । मैं कुटुम्बकी आज्ञा बराबर माँग रहा हूँ । यहाँ आनेके बाद भी पाँच-छह पत्र लिखे हैं, मगर अिजाजत नहीं मिली । अब मैंने खुद ही दीक्षा लेनेका विचार किया है । ” अिस पतिकी साठ वर्षकी वृद्धि माँ है । जिन सज्जनने अिस बारेमें मेरे पास पत्रिका भेजी थी, अुनसे मैंने और हालत पूछे, तो नीचे मुताबिक मिले हैं । पत्र हिन्दीमें है : “ गुलाब मामूली पढ़ी लिखी है, हिन्दी लिखना पढ़ना जानती है । अुसने अपने भांव बताये । अुनके अनुसार अुसके मित्रने पत्रिका लिख दी और अुसने छपा दी । वह अपने भाअीके साथ जाकर खुद ही छपा लायी । पति साधारण हिन्दी लिखनापढ़ना जानता है । कुटुम्बकी हालत नाजुक है । अभी तक अुसे किसीने दीक्षा नहीं दी ! ”

मुझे अुम्मीद है कि अिस नौजवानको कोअी दीक्षा नहीं देगा । अितना ही नहीं, वह खुद अपना धर्म समझ जायगा । यह तो शोभाकी बात हो सकती है कि छोटी अुम्रमें बुद्ध या शंकराचार्य जैसे ज्ञानी दीक्षा ले लें । पर हरअेक जवान अैसे महापुरुषोंकी नकल करने लग जाय, तो यह धर्मके लिअे और अपने लिअे शोभाके बजाय शर्मकी बात होगी । आजकल ली जानेवाली दीक्षामें कायरताके सिवा और कोअी बात देखनेमें नहीं आती और अिसीसे साधु भी तेजस्वी होनेके बजाय ज्यादातर हम-जैसे ही दीन और अज्ञानी होते हैं । दीक्षा लेना बहादुरीका काम है और अुसके पीछे पिछले जन्मके बड़े संस्कार या अिस जिन्दगीमें

मिला हुआ अनुभव ज्ञान होना चाहिये । बूढ़ी माँ और जवान स्त्रीका कुछ भी विचार किये बिना दीक्षा लेनेवालेमें अितना अधिक वैराग्य होना चाहिये कि आसपासका समाज उसे समझे बिना न रहे । ऐसी कोभी भी ताकत भिस दीक्षा लेनेवाले जवानमें नहीं दीखती ।

लेकिन दीक्षा लेनेके लिये अतुल्य नौजवान दीक्षाका अधिक विस्तृत अर्थ क्यों नहीं करते ? अभी तो संसारधर्म पालनेवाले भी बहुत थोड़े देखे जाते हैं । घर बैठे दीक्षा-जैसी जिन्दगी बितानेमें कुछ कम पराक्रम नहीं चाहिये, और सच्ची कसौटी तो उसीमें होती है । बहुतसे दीक्षा लिये हुआँको मैं जानता हूँ, और वे बेचारे सीधेपनसे मंजूर करते हैं कि न अन्होंने प्रमादको जीता और न पाँच अिन्द्रियोंको । दीक्षा लेकर तो अन्होंने सिर्फ अपने खाने पहननेकी सहूलियत बढ़ा ली है । सन्तोषके साथ, पाक रहकर, सचाभीको रखते हुअे, गरीबीसे घरका काम चलाना, पराभी स्त्रीको माँ-बहन समझना, अपनी स्त्रीके साथ भी हृद बाँधकर भोग भोगना, शास्त्रों वगैराका अध्ययन करना और भरसक देशकी सेवा करना कोभी छोटीमोटी दीक्षा नहीं है । दीक्षाका अर्थ है आत्म समर्पण । आत्म समर्पण बाहरी ढोंगसे नहीं होता । यह मनकी चीज़ है और उसके सिलसिलेमें कुछ बाहरी आचार भी जरूरी हो जाता है, लेकिन वह शोभा तभी पाता है, जब वह भीतरी सफाई और भीतरी त्यागकी सच्ची निशानी हो । अुसके बिना वह सिर्फ बेजान चीज़ है ।

वर्ण-व्यवस्था

दूसरा हिस्सा

जाति और कुरीतियाँ

जाति 'बंधन'

जातिको मैंने संयमके बढ़ानेमें मदद देनेवाली मंजूर किया है । पर आजकल जाति संयमके रूपमें नहीं, बल्कि बंधनके रूपमें पायी जाती है । संयम अिन्सानको शोभा देता है और स्वतंत्र करता है; बंधन बेड़ी बनकर फिक्रमें डालता है । आजकल जातिका जो अर्थ किया जाता है, वह कोअी चाहने लायक या शास्त्रीय नहीं । आज जिस मानीमें वह अिस्तेमाल होता है, उस मानीमें जाति जैसा शब्द ही शास्त्र नहीं जानता । वर्ण हैं और चार ही हैं । लेकिन जातियाँ बेशुमार हैं और उनमें भी दल बन गये हैं, जिनमें बेटीव्यवहार बन्द होता जा रहा है । यह तरक्कीकी नहीं, बल्कि अवनतिकी निशानी है ।

ऐसे विचार नीचेके पत्रसे पैदा हुअे हैं :

“ आप जैसे लोग तो सब जातियोंको अेक होनेका अपुदेश देते हैं; अिधर मेरी जातिमें, जो लाड जातिके नामसे पहचानी जाती है, अध्यक्ष-जैसे मामूली आइदके बारेमें जातिभाबियोंका मतभेद हो गया है, और वह यहाँ तक कि वे जातिकी सभामें हाथ-पाभी करनेसे भी बाज नहीं आते । आप-जैसोंको अिस मामलेमें तकलीफ देनेकी बिल्कुल अिच्छा नहीं । फिर भी अेक जातिमें कुटुम्बका झगड़ा और आपसकी मारपीट बन्द होना अच्छा है । अिसलिये मेरी नम्र प्रार्थना है कि आप अपनी राय अिस बारेमें “ नवजीवन ”के जरिये लाड जातिके सब भाबियोंको बतानेकी कृपा करें ।

“ हमारी जातिमें खंभाती, आग्नी, दमणो, पेटलादी, सरती और दूसरे लाड भाओ शामिल हैं । अिनमेंसे पहले चारमें बेटीव्यवहार होता है । पिछले बीस-तीस वर्षसे अध्यक्षका चुनाव पहली चार जातियोंमेंसे होता आया है । अिस सालकी जातिसभामें अिन चारकी तरफसे अेक ऐसा प्रस्ताव आया था कि अध्यक्ष व मंत्री होनेका हक अुन्हीं लोगोंको है, जो बेटीव्यवहारको और बम्बकी लाड जातिकी सत्ताको सबके अपूर मानते हों । अिस प्रस्तावसे सरती लाडभाबियोंकी भावनाओंको सख्त चोट लगी; और लगभग द्वाओसौसे तीनसौ आदमियोंके दस्तखतोंसे अेक प्रार्थनापत्र कमेटीको भेजा गया था । लेकिन कमेटी अभी तक किसी तरहका फैसला नहीं कर सकी । अिस समयका वातावरण अितना ज्यादा खराब है कि शायद जातिमें दल बन जायँ और सम्भव है अदालतमें भी मामला चला जाय । ”

यह खबर सही हो तो दुःखकी बात है । जिसमें अध्यक्ष और मंत्रीके ओहदेके लिये लड़ाई कैसी ? सूरती, आग्री, दमणी वगैरा भेद कैसे ? लाड युवक मंडलकी सभामें जब मैं गया था, तो मुझपर अच्छा असर पड़ा था । अध्यक्षका पद सेवाके लिये होता है, मानके लिये हरगिज़ नहीं । मंत्री तो समाजका नौकर है । जिस जगहके लिये होड़ हो, तो भी मीठी ही होनी चाहिये । मुझे अुम्मीद है कि अपरका झगड़ा दोनों पक्ष मिलजुलकर मिटा लेंगे । बनिये सभी मिलकर एक जाति क्यों न बन जायें ? ऐसा धर्म कहीं भी नहीं है कि वैश्य जातिमें लड़की दी-ली नहीं जा सकती । मैं अगर अपजातियोंको किसी हद तक मानता हूँ, तो वह सिर्फ सपाजके सुभीतेके लिये । जब अपर जैसे किस्सोंका अनुभव होता है, तब ऐसा ही लगता है कि अिरादेपूर्वक अिन बन्धनोंको काटकर उनसे छूटना और छुड़ाना चाहिये ।

ता० ३-५-२५

२

धर्मके नामपर लूट

लाड जातिमें जो आपसी झगड़ा चल रहा है, उसके बारेमें मेरे पास एक लम्बा पत्र आया है । लिखनेवालेने शुद्ध प्रयत्न करके बहुतसी जानकारी दी है और बताया है कि समझौतेके लिये जो अपाय हो सकते हैं वे किये गये हैं । मैं यह माननेको तैयार हूँ । मगर मेरा विचार लाड जातिके बारेमें कुछ भी लिखने या सुझानेका नहीं । हाँ, उसपरसे आनेवाले विचार हिन्दू समाजके सामने रखनेका अिरादा है ।

एक तरफ़ हिन्दू धर्मको बचानेके लिये अच्छे संगठन हो रहे हैं; दूसरी तरफ़ हिन्दू धर्ममें जो कमज़ोरियाँ घुस गयी हैं, वे उसे अन्दरसे कुतर रही हैं । यानी, जैसे एक मोटे लकड़ेके गर्भको भीतरसे कीड़ा कुतर कर खा रहा हो, तो उसे अपरसे ढाँकने या रोगन लगाने पर भी आखिर वह लकड़ा खाया ही जायगा, वैसे ही हिन्दू जातिके गर्भमें जो

कीड़ा पैठ गया है और उसे खाये जा रहा है, उसका नाश न किया जायगा तो बाहरसे हिन्दू धर्मका कितना ही बचाव क्यों न किया जाय, फिर भी उसका नाश होगा ही ।

वर्णके बन्धनके नामपर वर्णका संकर हो गया है । वर्णकी मर्यादा चली गयी है, उसकी ज्यादती रह गयी है । वर्णकी पाबन्दी धर्मके बचावके लिये थी, वह अब अलटी होकर धर्मको कुतर रही है । वर्ण चार होनेके बजाय बेशुमार हो गये हैं । वर्ण मिटकर जातिके बाड़े बन गये हैं । और उस गिरोहके भीतर, घूमनेवाले ढोर जैसे डिब्बेसे भर दिये गये हों, उसी तरह हम बेमालिकके बनकर गिरोहमें घिरे कैदी बन गये हैं । वर्ण जनताके पालनेवाले थे; जातियाँ जनताका नाश करनेवाली हो गयी हैं । हिन्दू जनताकी या हिन्दुस्तानकी सेवा करनेके बजाय हम अपने बाड़ोंकी यानी अपनी बेड़ियोंकी रक्षा करनेमें ही फँसे रहते हैं; और उसके सिलसिलेमें अठनेवाले सवालकों फ़ैसला करनेमें हमारा वक़्त, हमारी बुद्धि और हमारा रुपया खर्च होता है । पारधी छत्ता तोड़नेको सामने खड़ा है और बेवकूफ़ शहदकी मक्खियाँ अक दूसरेके घरपर कब्ज़ा करनेके लिये पंचायतें कर रही हैं ! जहाँ बीसा दस्साका फ़र्क ही मिटा देना है, वहाँ यह सवाल ही कहाँ रहता है कि बीसे बड़े या दस्से ? जहाँ हिन्दुस्तानकी सारी बनिया कौमको अक करनेकी आवश्यकता है, वहाँ दस्से-बीसे, मोढ़-लाड, हालारी-धोधारीके भेदों और उनके आपसी झगड़ोंकी गुंजायश ही कहाँ है ?

वर्ण धन्धेकी वजहसे ये और जातिका दारोमदार सिर्फ़ रोटीबेटी व्यवहार पर है । जहाँ तक मैं रोटीबेटी व्यवहारकी मर्यादा रखूँ, वहाँ तक कलालकी दुकान रखूँ तो क्या, शमशेर बहादुर हो जाऊँ तो क्या, या विलायती डिब्बेमें बन्द किया हुआ गायका मांस बेचूँ तो क्या ? यह सब कुछ करते हुअे भी मैं बनिया जातिमें पूजा जा सकता हूँ ! मैं अक पत्नीके साथ अपना धर्म पालूँ या कंअी सुंदरियोंके साथ लीला करूँ, उससे मेरी जातिको कोअी सरोकार नहीं ! अितना ही नहीं, यह सब होते हुअे जातिका सेठ भी रह सकता हूँ, जातिके लिये नअी स्मृतियाँ बना सकता हूँ और जातिसे अिनाम अिकराम भी ले सकता हूँ ! जाति अिस बातकी

चीकीदारी तो ज़रूर करती है कि मैं कहाँ खाता हूँ, अपने बच्चोंको कहाँ ब्याहता हूँ; लेकिन मेरे चालचलनपर निगाह रखना जातिका काम नहीं ! मैं विलायत हो आया हूँ, तो कन्याकुमारीके मन्दिरके भीतरी हिस्सेमें नहीं जा सकता; लेकिन मैं खुले तौरपर व्यभिचार करता हूँ, तो भी उस भीतरी हिस्सेमें जानेसे मुझे कोई नहीं रोक सकता !

अस चित्रमें कहीं अतिशयोक्ति नहीं । यह धर्म नहीं, पापकी हद है । असमें वर्णका बचाव नहीं, नाश है । अगर यह पाप दूर न हुआ तो मैं, जो वर्णाश्रमको बचानेकी कोशिश कर रहा हूँ, वर्णकी रक्षा नहीं कर सकूँगा । असमें तो वर्णके नामपर ज्यादाती ही दिखायी देती है; ज्यादातीके बजाय वर्णका ही नाश हो जानेका डर है ।

अब यह देख लें कि अिन बेशुमार जातियोंकी रक्षा किस तरह होती है । अहिंसाप्रधान धर्म जातिका बचाव हिंसासे करता है । जिसने जातिके बनावटी और बेजा बन्धन तोड़े हों, उसे समझाने और उसकी ' भूल ' बतानेकी तो कोशिश ही नहीं की जाती, झटपट उसे जातिसे बाहर निकाल दिया जाता है । यह जाति बाहर करना क्या है सब तरहसे सताना है; उसका खाना बन्द, उसका बेटी व्यवहार बन्द, उसका श्मशान व्यवहार बन्द । यह सजा जाति बाहर किसे हुअे आदमीके बारिसोंपर भी अुतरती है ! अिसीका नाम है चींटीपर पन्सेरी; या आजकलकी भाषामें कहें तो अेक तरहकी डायरशाही । अस तरहकी तकलीफसे हज़ार-दोहज़ार आदमियोंकी जातियाँ टिकनेके बजाय मिटनेवाली ही हैं । नाश होना भी बाहिय़ । लेकिन जबरदस्ती हुआ नाश नुकसान पहुँचाता है । नाश खुशीसे किया गया हो, तभी वह समाजका बल बढ़ाता है ।

अच्छेसे अच्छा अुपाय तो यह है कि छोटी छोटी जातियोंकी पंचायतें अिकट्ठी होकर अेक जाति बन जायें, और यह बढ़ा संघ दूसरे संघोंके साथ मिल जाय और बादमें अिसे चारमेंसे अेक वर्णमें जगह मिल जाय । मगर आजकलकी सुस्तीमें अैसा सुधार जल्दी होना नामुमकिन-सा ही है ।

तो धर्मपर चलना जितना कठिन है, अुतना ही सहल भी है । जैसे हरअेक संघ धर्मको बढ़ा सकता है, वैसे हरअेक आदमी भी बढ़ा सकता है ।

शक्ति निडर होकर जिसे धर्म समझता है उसपर अमल करे । फिर उसे जाति बाहर कर दिया जाय, तो भी उस बारेमें बेफिकर रहे और जातिकी तीन सजाओंको विनयके साथ माथे चढ़ाकर बन्धनसे छूट जाय । जातिमें भोजन करनेसे कोअी लाभ नहीं । न करनेमें बहुत दफा तो फायदा ही होता है । मृत्युभोजनको तो मैं पाप ही समझता हूँ । लड़केके लिये लड़की और लड़कीके लिये लड़का उसी जातिमें न मिले, तो कोअी चिन्ताका कारण नहीं । जिसे सजा दी गयी है, उसे वह सजा नहीं मिलती, क्योंकि वह अपजातियोंकी हस्तीमें मानता ही नहीं । कन्या या वर लायक हो, तो दूसरे संघके सुधारकोंमेंसे जोड़ी मिलनेमें अब्बचन बिलकुल नहीं होगी । लेकिन हो तो उसे सहना ही धर्म है । चरित्रवान और संयमी ऐसी तकलीफोंको तकलीफ नहीं मानता । वह उन्हें खुश होकर सहेगा । मरनेके समय जातिकी तरफसे मदद न मिले तो अिसमें भी दुःख क्या ? दूसरे मददगार मिल जायेंगे । मौतगाड़ी*के बारेमें तो मैं लिख ही चुका हूँ । उसे काममें लेनेसे थोड़ी मददसे काम चल सकता है । और जिसे अुतनी मदद भी न मिले, वह मजदूर कर ले । जिसके पास मजदूरके लिये भी दाम न हों, वह यह भरोसा रखे कि जो भगवानका दास है, उसके लिये भगवान कहीं न कहींसे सहायता भेज ही देगा । सजाका डर छोड़ना सत्याग्रह है । जैसे सरकारसे लड़नेके लिये सत्याग्रह सुनहरा हथियार है, वैसे ही जातिकी सरकारसे लड़नेके लिये भी है । दोनों तकलीफें अेकसी हैं । अुनकी दवा भी अेक ही है । जुल्मकी दवा सत्याग्रह है । हिन्दूधर्मकी — हरअेक धर्मकी — रक्षा सिर्फ सत्याग्रहसे ही हो सकती है ।

हरअेक धर्मप्रेमीको मेरी विनयके साथ सलाह है कि उसे जातियोंकी तरह तरहकी खटपटमें न पड़कर अपने फर्जमें पक्का होना चाहिये । फर्ज अपने धर्म और देशके बचावका है । धर्मका बचाव छोटी छोटी जातियोंका बेजा बचाव करनेमें नहीं, धर्मपर चलनेमें है । धर्मके बचावका मतलब सभी हिन्दुओंका बचाव है । सभी हिन्दुओंका बचाव खुद चरित्रवान बननेमें ही है । चरित्रवान बननेका अर्थ है सचाअी, ब्रह्मचर्य, अहिंसा

* देखो अिस हिस्सेके अन्तमें अिस नामका लेख ।

वगैरा व्रतोंको पालना, निडर बनना यानी किसी भी मनुष्यसे न डरना, अश्वर पर भरोसा रखना, असीसे डरना, यह जानकर कि वह हमारे सब कामों और विचारोंका देखनेवाला है मैले विचार करनेसे भी डरना, जीवमात्रकी सहायता करना, पराये धर्मवालेको भी दोस्त समझना, दूसरोंकी भलाअमीमें अपना समय बिताना, वगैरा वगैरा । उपजातियोंको तभी निभाया जा सकता है, जब उनका काम सब बातोंको देखते हुअे धर्म और देशका बल बढ़ानेवाला हो । जो जाति सारी दुनियाका अस्तिमाल अपने लिये करेगी, उसका नाश होगा । जो जाति अपना उपयोग जगतकी भलाअमीके लिये होने देगी, वह भले ही जिन्दा रहे ।

ता० ७-६-२५

३

ये बाड़े तोड़ो

[मोरबीके राजा और वहाँकी मोढ़ जातिके किये हुअे स्वागतके जवाबमें दिया हुआ भाषण ।]

“महाराजा साहब और प्रजा और मोढ़ जातिने मेरा और मेरे साथियोंका जो स्वागत किया और मानपत्र दिया, उसके लिये मैं सबका दिलसे शुक्रिया अदा करता हूँ । ‘मोढ़ भाजियोंसे मुझे अितना कहना चाहिये कि आपसे मानपत्र लेनेका मुझे कुछ भी हक नहीं । मुझे सपनेमें भी खयाल नहीं कि मोढ़ जातिकी अेक जातिके तौरपर मैं कोअी भी सेवा कर सका हूँ । कितने ही भाअी अैसा माननेवाले भी हैं कि मैंने नुकसान भले ही पहुँचाया हो, पर सेवा तो नहीं की । घड़ी भरके लिये यह अिलज्जाम मान भी लूँ, तो भी यह मानपत्र आपकी अुदारता जाहिर करता है । पर मुझे अितनी सी अुदारतासे सन्तोष नहीं होता । क्योंकि यह अुदारताकी निशानी है, तो भी मानपत्र लेनेवाले और देनेवालोंमें जिस तरह यह खानगी समझौता रहता है कि मानपत्र लेनेवाला जो काम कर रहा है उसके लिये देनेवालेकी दुआ और राय है, उस तरहका समझौता हमारे बीच नहीं है । अिसलिये भी मुझे मानपत्र लेनेमें संकोच है ।

आपकी इस छोटीसी जातिके बारेमें जो अितना कहता हूँ उसमें कुछ मर्म है, क्योंकि मैं यह माननेवाला रहा हूँ कि अिन छोटे छोटे बाढ़ोंका नाश करना ही चाहिये। मुझे इस बारेमें शक नहीं कि हिन्दू धर्मके भीतर जातियोंके लिये जगह नहीं है। और यह मैं मोढ़ या दूसरी जो भी जातियाँ यहाँ हों उन्हें ध्यानमें रखकर कहता हूँ। सच्चे शास्त्रमें जातिके बारेमें कोई भी आधार नहीं है। आधार सिर्फ चार वर्णोंके लिये है। ये चार वर्ण बनाकर भगवानने हाथ धो लिये हैं। वर्ण-धर्ममें जातिकी बू तक नहीं।

आप सबको — मोढ़ जातिके जरिये — सुनाना चाहता हूँ कि जातिके बाढ़े भूल जाजिये। आज जो जातियाँ हैं उन्हें आहुतिके बतौर अिस्तेमाल कीजिये और नअी न बनने दीजिये। अिन जातियोंको कुर्बान कर दीजिये और अिनमें कोई संयमकी बात हो तो उसका पालन कीजिये। अिन छोटे बाढ़ोंके खतोंमें पड़े रहेंगे तो बदबू अुठेगी। वैद्य खड़े भर देनेकी सलाह देते हैं। जिस तरह अुनमेंसे बदबू अुठती है, मच्छर भी पैदा होते हैं और वे घातक साबित होते हैं, उसी तरह यह समझ लीजिये कि ये जातिके बाढ़े भी मनुष्यके लिये घातक हैं। यह समझ लीजिये कि अीश्वर कभी ऐसी घातक रचना नहीं कर सकता।

अपने अनुभवकी बात कहता हूँ। मानेंगे तो सुखी होंगे। समय अपना काम करता रहता है। इस समयको आड़ा हाथ लगाना हो तो भले ही लगाजिये, पर यह मान लीजिये कि लगाना फ़ज़ूल है। अगर अिन बाढ़ोंके बचावमें हम नाहक वक्त गँवाया करेंगे, तो वह सूरजके सामने धूल अुड़ाकर अपनी ही आँखमें डालनेके खेलकी तरह होगा। आपने मुझे मानपत्र न दिया होता तो ये बातें सुनानेका दिल न होता, मौका न मिलता। इस चीज़को छोटी न मानिये। बहुत बरसोंसे हम वहम और अज्ञानमें पड़े हैं। इस वहम और अज्ञानको ज्ञानका रूप न देना। आज दुनियामें जुदा जुदा धर्मोंमें मुकाबला हो रहा है; और इसको सुदार भावसे देखेंगे तो जान पड़ेगा कि ये जातियाँ तरक्कीकी, धर्मकी, स्वराज्यकी, और रामराजकी—जिसे मैं रट रहा हूँ उस रामराजकी — रोक्नेवाली हैं। मैं आपसे पूछता हूँ कि मोढ़ जातिमें ऐसा क्या धरा

है कि उसीके गीत हम गाया करें? जहाँ तहाँ हमारे आचार विचारमें विरोध देखा जाता है। हमारे गीतोंका अर्थ अलग है और हमारा आचरण अलग है। यह तो सोंप चला गया और लकीर रह गयी वाली बात हुआ। आचार और विचारमें मेल बैठानेकी जबरदस्त कोशिश कीजिये। आपने मानपत्र दिया है, उसके जवाबमें यह कोशिश आपसे माँग लेता हूँ। मैंने जिस खानगी समझौतेकी बात कही है, उसे ही आप मान लेंगे तो मुझे लगेगा कि मैंने आपसे मानपत्र लिया और इस जातिमें जन्म लिया तो कोई हर्ज नहीं।

मेरा तो आचार और विचारकी अेकताका यज्ञ चल रहा है और मेरे इस यज्ञके कारण मोढ़ जातिने मेरा बहिष्कार किया है; हालाँकि बादमें मोढ़ोंने देख लिया कि मैं बहिष्कारके लायक नहीं, क्योंकि मैंने जातियोंसे फ़ायदा उठानेका कभी विचार तक नहीं किया। मैं तो अिन बाड़ोंको तोड़नेकी अपनी कोशिशें तेज करना चाहता हूँ। आपको खबर न होगी कि मैंने अपने अेक लड़केका ब्याह जातिसे बाहर किया है। और इसमें मुझे कुछ भी नुक़सान नहीं हुआ। मेरे लड़केको अेक भक्ति भरे वैष्णव कुटुम्बकी लड़की मिली और उसके लिअे मेरा लड़का मुझे धन्यवाद देता है। इस तरह यह कहा जा सकता है कि मैंने तो दूसरी जातिमेंसे अेक जवाहर चुराया है। छोटी छोटी जातिवालोंको मैं कहता हूँ कि तुम्हारी लड़कियाँ कुँवारी रहती हों तो मुझे सोंप देना। मैं दूसरी जातिके अच्छे सुशील लड़कोंके साथ तुलसीके पत्ते या सूतके धागेसे ब्याह दूँगा। मैंने अछूतकी लड़कीको गोद लिया है, फिर भी दूसरी जातिके लोग अपनी लड़की देनेमें संकोच नहीं करते, तो आपको किस लिअे डर हो? मैं तो तीन दिन बाद अेक मोढ़ कन्याके साथ अपने लड़केकी शादी करनेवाला हूँ। इस तरह मेरा काम चलता रहता है, दिक्कत नहीं आती।

इस तरह मोढ़ जातिके बहाने मैं सब बाड़ेवालोंसे कहना चाहता हूँ कि बाड़े तोड़िये। अठारह वर्ण तो आम लोगोंकी कहावतमें हैं, गुण और कर्मके अनुसार तो चार ही वर्ण हैं। खाने पीनेके आचार अङ्कूतपनके बारेमें हैं। वर्ण तो अेक अैसा सुन्दर पेड़ है जिसकी छायामें बैठकर मनुष्य जाति अपने लिअे छाया और बल पा सकती है। वर्णव्यवस्था

संयमका धर्म है; जिसमें रुपये पैसेका खयाल नहीं; पर धर्मपर चलनेका मसद है । ऋषि मुनियोंने जिसकी कल्पना और बनावट धर्मपर चलनेके राजमार्गके तौरपर की है । जिसके बजाय अब यह हमारे स्वार्थी, हमारे अँबों और हमारे भोगोंको बल पहुँचानेका जरिया बन गया है । अब शुद्ध वर्णव्यवस्था क्रायम करनेकी काशिश कीजिये ।

ता. २९-१-२८

४

सत्याग्रह और जाति सुधार

सत्याग्रहका असूल जैसे जैसे समझमें आता जा रहा है, वैसे वैसे उसके नये अस्तिमाल होते जाते हैं । वह सिर्फ सरकारका सामना करनेके लिअे ही नहीं, बल्कि जाति और कुटुम्बमें भी काममें लिया जाता दीख रहा है । अक जातिमें बेटी बेचने का घातक रिवाज है । अक जवानको उसे रोकनेकी प्रेरणा हुअी है । यह सवाल अठा है कि उसे क्या करना चाहिये । सत्याग्रहका हलका अंग असहयोग है । अस जातिमें कन्याविक्रय रोकनेका अस जवानका अिरादा हुआ है । अिरादा शुद्ध है, लेकिन वह असहयोग करे या नहीं, करे तो किस तरह, और किसके साथ ? अस मामलेमें निश्चित राय दे सकना कठिन है । लेकिन कुछ आम क्रायदे तो ऐसे सभी मामलोंके लिअे बताये ही जा सकते हैं । •

पहले तो असहयोग अेकाअेक किया 'ही नहीं जा सकता । मुद्दसे चले आते वुरे रिवाज पलभरमें नहीं मिटाये जा सकते । सुधारका अेक पैर है, असलिअे वह लँगड़ाता चलता है । जो धीरज खो बैठे वह शुद्ध असहयोगी नहीं बन सकता । पहली सीढ़ी यह है कि सुधारकको आम लोगोंकी राय अपने हकमें बनानी चाहिये । जातिके सयानोंसे मिलना चाहिये, उनकी दलीलें सुननी चाहिये, सुधारक बेचारा गरीब आदमी होगा, उसे कोअी पहचानता न होगा और सयाने उसे दाद न देंगे । तब वह क्या करे ? ऐसा गरीब हो तो उसे जान लेना चाहिये कि वह सुधारका

झरिया बननेके लिये पैदा नहीं हुआ । हम सब चाहते हैं कि दुनियासे झूठ अुठ जाय, पर झूठे आदमियोंको कौन समझावे ? यह सुधार बहुत जरूरी है, फिर भी हम धीरज रखकर कैसे बैठे हैं ?

हकीकत यह है कि सुधारकमें खुदी न होनी चाहिये । सारी खराबियोंकी जिम्मेदारी हम क्यों ले लें ? हम अितनेसे संतोष मान लें कि हम खुद सच कहते हैं और करते हैं । अिसी तरह जातिकी सङ्ग्राहके बारेमें भी, हम अपने आचारविचारको साफ़ रखें और दूसरोंके लिये तटस्थ रहें ।

‘हुं करुं, हुं करुं, अं ज अज्ञानता,
शकटनां भार ज्यम श्वान ताण ।’

यह पद रटते हुअे अिसके अनुसार निरभिमान रहना चाहिये ।

जब घमण्ड छोड़कर रहते हुअे भी यह मालूम हो कि हम पर जिम्मेदारी है, तो हम पर अेक खास फ़र्ज़ आ पड़ता है । जैसे, जातिके महाजन या पंच निरभिमान होनेका दावा करके मौजूदा गन्दगीको दरगुजर नहीं कर सकते; क्योंकि सेठ या महाजन बनकर वे जातिकी नीतिके रक्षक बने हैं । अेक भी लड़की बेची गयी, तो अुस निर्दोष बच्चीका शाप अुन्हींको लगेगा ।

पर सेठ और महाजन अिस मैलको निकालनेके लिये कुछ भी नहीं करते । अितना ही नहीं, वे खुद ही बिक्री करते हैं । तब जातिका बेचारा यह गरीब सदस्य क्या करे ? वह खुद साफ़ हो गया है । जातिके सब मुखियोंसे मिल चुका है । अुन्हींने अिसे हर जगहसे दुत् दुत् करके कुत्तेकी तरह बाहर निकाल दिया है । अुस पर गालियोंकी वर्षा हुअी है । बेचारा नाअुम्मीद होकर थका और अुदास घर आया है । अुपर आकाश और नीचे धरतीके सिवा और कुछ नज़र नहीं आता । अब अीश्वर ही अुसकी पुकार सुननेवाला है । पर अभी सीढ़ी तो पहली ही है । तपस्याके लायक होनेसे पहले अुसका जो कसौटी होनी थी वह हुअी है । अब वह अुस आवाज़को सुन सकता है, जां अुसके भीतरसे अुठती है । वह अन्तर्यामी

* गाढ़ाक नाचे चलनेवाला कुत्ता जैसे समझता है कि बड़ी गाड़ी खींच रहा है । वैसे ही ‘मैं करता हूँ, मैं करता हूँ’ कहना अपना अज्ञान जताना है ।

या घटघटमें रहनेवालेसे पूछता है : 'मैंने अपमान सहा है, फिर भी मैं अपने भाजियों पर प्रेम रखता हूँ ? मैं उनकी सेवा करनेको तैयार हूँ ? मैं उनकी जूतियाँ खाना भी बरदाश्त कर सकूँगा ?' अगर अन्तर्यामी अिन सब सवालोंनेका जवाब 'हाँ'में दे, तो वह दूसरा कदम उठानेको तैयार हुआ है ।

अब वह प्यारके साथ असहयोग शुरू कर सकता है । प्रेममय असहयोगका मतलब हकोंका छोड़ना है, फ़र्ज़ोंका छोड़ना नहीं । जातिमें अिस गरीब सेवकके हक़ क्या हैं ? जातिमें खाना और जातिमें ब्याहना । ये दोनों हक़ वह नरमीके साथ छोड़ दे, तो उसे खुद जो कुछ करना था, वह कर चुका । पंचायत उसे काँटेकी तरह निकाल फेंके । घमण्डके नशेमें चूर पंच यह समझकर कि 'चलो, अेक थाली कम हुआ, लड़की माँगनेवाला अेक कम हुआ,' उसका नाम ही वहीखातोंमेंसे निकाल डालें । फिर भी वह गरीब सेवक निराश न होकर भरासा रखे कि उसके बोये हुअे छोटेसे बीजमेंसे बड़ा भारी पेड़ खड़ा होगा । अपना पूरा फ़र्ज़ अदा किये बाद — उससे पहले नहीं — वह गा सकता है कि 'मुझे काम करनेका हक़ है, फल पानेका कमी नहीं ।'

अब यह गरीब तपस्वी बनवासी हो गया । उसने भीष्मकी सी प्रतिज्ञा की है कि ब्रह्मचारी है तो जातिका मैल धुलने तक वह ब्रह्मचारी रहेगा, और विवाहित है तो भी अपनी छीके साथ सिर्फ़ दोस्तका-सा बर्ताव रखेगा । उसके लड़के हैं तो खुद उन्हें भी ब्रह्मचर्यसे रहना सिखायेगा । खुद कमसे कम परिग्रह रखेगा, ताकि जातिकी मदद न लेनी पड़े, दूसरेके आगे हाथ न फैलाना पड़े । अिस तरह संन्यासीका-सा रहन सहन करके बय जाना ही उसका बनवास है । प्रेममय असहयोगमें अुद्वण्डताकी गुजायश नहीं । उसमें तो संयमकी रोशनी ही हो सकती है । बोये हुअे बीजको संयमका पानी पिठाना है । जां यह सोचना है कि 'मेरे लड़के न ब्याहे गये तो दूसरी जातिमें ब्याह दूँगा और खानेकी दावत दूसरी जगह कलूँगा', वह संयमी भी नहीं और असहयोगी भी नहीं । वह तां ढांगी है । संयमी असहयोगी तो जातिके ही गाँवमें रहकर तपस्या करेगा । अहिंसाके पास दुःमनी नहीं टिक सकती । वह त्यागी हिमालयमें बैठकर पंचोंके लिअे अहिंसा रखनेका दावा करके अुनका दिल पिघलानेकी

आशा नहीं कर सकता । पंचोंने जो उसकी बेअिज्जती की है, उसमें एक कारण यह भी है कि अन्होंने उसे अविवेकी अद्वत जवान मान लिया है । उसे अभी तो यह साबित करना है कि वह गरीब और जवान होकर भी अद्वत या अविवेकी नहीं है, बल्कि नम्र और विवेकी है ।

ऐसा करते करते, सेवाके मौकोंपर अपनी जातिके भाभी बहनोंकी सेवा करते करते और फिर भी बदलेकी आशा न रखत हुअे वह देखेगा कि सुधारके काममें दूसरे साथी मिलेंगे । वे असहयोग न करें तो भी उनका प्रेम उसके साथ होगा । कारण, जैसे हम संस्कारी भाअियोंको अपने ज्ञान और त्यागके घमण्डमें गालियाँ देते हैं, वैसे हमारा यह संयमी जवान उन लोगोंको गालियाँ न देगा जो जातिमें रहकर उसका साथ न दें या विचारमें उसके साथ होकर भी असहयोगमें शरीक न हों । बल्कि वह उनसे मुहब्बत करके उनके दिलोंको जीत लेगा । उसे रोज यह अनुभव होता जायगा कि प्रेम तो पारस पत्थर है । पर यह तजरबा होनेमें देर भी लगे तो उसे धीरज न छोड़ना चाहिये और यह भरोसा रखना चाहिये कि प्रेम बीजका नतीजा अनगिनत प्रेम फल ही हो सकते हैं ।

मुझे जो खत मिला है, उसमें पूछा गया है कि हमारा तपस्वी असहयोगी जातिमें भोजन करना छोड़ दे, तो क्या जातिमें जो दोस्त हैं उनके यहाँ भी खाना बन्द कर दे ? हकीकत तो यह होती है कि जातिसे अिस्तीफा मिलते ही पंच गुस्सेमें आकर उस त्यागीको जातिसे बाहर करेंगे, और जो कोअी उसके साथ पानी या रोटीबेटी व्यवहार करेगा उसे सजा देंगे । अिसलिअे व्यक्तियोंके साथ खानापीना छोड़नेका सवाल ही नहीं रहेगा । अिस तरह जाति बाहर करनेका हुक्म निकले, तो संयमीका विशेष धर्म यह होगा कि खुले या छिपे तौरपर जातिके मित्र उसे खानेका न्योता दें तो भी वह न जाय । कोअी जातिवाला जानबूझकर असहयोगमें शामिल हो, तो उसका न्योता जरूर मानना चाहिये । ऐसा हो भी सकता है ।

मगर आम तौरपर यह कहा जा सकता है कि मित्रोंके साथ खाना पीना छोड़नेका मौका ही न आवे । फिर भी मान लीजिये कि आवे तो उसे छोड़नेकी जरूरत नहीं । हाँ, जो लड़की बेचना ठीक समझते हों, उनका न्योता वह मंजूर न करे ।

जिस परसे हमने देख लिया कि :

१. असहयोग करनेसे पहले लोकमत तैयार करनेके बहुतसे काम करने चाहिये ।

२. असहयोगीमें गुस्सा किये बिना विरोधीकी गालियाँ वगैरा सहनेकी शक्ति होनी चाहिये ।

३. असहयोगमें प्रेम ही होना चाहिये ।

४. असहयोग करनेके बाद असली जगह न छोड़ी जाय ।

५. असहयोगीको कठिन संयम रखना चाहिये ।

६. असहयोगीको अपने अुपायोंपर पूरा भरोसा होना चाहिये ।

७. असहयोगीको फलके बारेमें परवाह न करनी चाहिये ।

८. असहयोगीके हर कदममें विवेक, विचार और नम्रता होनी चाहिये ।

९. असहयोग करनेका अधिकार या धर्म सबको नसीब न होता । अधिकारके बिना असहयोग बेकार होता है ।

यह सच है कि कितनोंको या बहुतोंको अुपरके नियम असंभव लगेंगे । कड़े संयमके बिना शुद्ध असहयोग हो नहीं सकता । फिर, जिस मामले पर हमने विचार किया है उसमें तो वह तपस्वी खुद ही करनेवाला है, खुद ही भोगनेवाला है, खुद ही सेनापति और खुद ही सिपाही है । उसमें कमी रहे तो उसके माथे तो निराशा लिखी ही समझनी चाहिये । जिसलिअे अैसे स्वतंत्र असहयोगीके लिअे तो असहयोग न छेड़ना ही अकलमंदीकी पहली निशानी है । पर छेड़ देनेके बाद तो जान चली जाय पर बात न छोड़नी चाहिये ।

दूसरा सवाल यह अुठता है कि अितना संयम रखकर जाति जैसी तंग संस्थामें सुधार भी क्या करना ? फिर, दूसरे कहेंगे कि हमें जब जातिको ही मिटाना है, तब कन्याविक्रय वगैरा बुराअियोंके पीछे क्या पड़ना ? यह सवाल बेमौक़ा है । हमारे सुधारकका सवाल जातिके लिअे ही है । अगर कुटुम्बके साथ असहयोग करनेकी बात ठीक समझी जाती है, तो जब तक जातियाँ हैं, तब तक अुनके साथ असहयोग करनेकी बात भी ठीक समझी जानी चाहिये ।

बहिष्कारका हथियार

('जातपाँतकी हालत' नामक टिप्पणी)

मारवाड़ी भाजियोंका सम्मेलन कलकत्तेमें था । उसमें मुझे ले गये थे । वहाँ सिर्फ़ जाति सुधारकी ही बात थी और उसीके बारेमें बहुतसे सवालोंने चर्चा हुआ थी । ऐसी जगह पर मैं क्या बोळूँ ? सुधारके बारेमें बोलनेके बजाय मैंने बहिष्कारके असूलकी बात ही उनसे ज्यादा की । मैं जानता था कि बहिष्कारने उनमें भयंकर स्वरूप पकड़ लिया था और भीतर भीतर ज़हर फैला रखा था । जिस भाषणका सार सभी हिन्दुओं पर लागू होनेके कारण यहाँ देता हूँ ।

बहिष्कारका हथियार जब शुद्ध मनुष्योंके हाथमें होता है, तब उसका अच्छा उपयोग होता है । नहीं तो, वह निरी हिंसाका स्वरूप पकड़ कर अस्तिमाल करनेवालेका और जिसके खिलाफ़ अस्तिमाल किया जाय उसका भी नाश कर सकता है ।

आजकल हम बहिष्कार करनेके अधिकारी नहीं रहे । एक बाप अपनी दस सालकी पुत्रीमें विधवा हुआ लड़कीको फिरसे ब्याह दे, तो क्या उसे और उस लड़कीको और उसे ब्याहनेवालेको जाति बाहर करनेमें कोई पुण्य है ? क्या जो अनीति करते हैं, दिन दहाड़े व्यभिचार करते हैं, शराब मांस खाते पीते हैं, उनका बहिष्कार होता है ? जो विचारमें व्यभिचार करते हैं, उनका क्या होता है ? मतलब यह कि जब तक हममें शुद्धि नहीं होती, तब तक कौन किसका बहिष्कार करनेका अधिकारी है ? कोई भी नहीं ।

बहिष्कारका नतीजा नयी जातियाँ पैदा करनेका ही स्वरूप पकड़ता है । आज जिन्हें हम तढ़ें कहते हैं, वे ही कल जातियाँ बन जायेंगी । जिस प्रकार, जिस ज़मानेमें जहाँ जातियाँ बिगड़ रही हैं, वहाँ बहिष्कारमें हर तरहसे बिल्कुल नुक़सान ही है ।

वर्णाश्रम तो धर्म है, पर बहुतसी जातियाँ धर्म नहीं। वर्णाश्रमको बचाना चाहिये। जातियोंको मिटाना चाहिये। इसलिये सुधारकोंका हौसला बढ़ाना चाहिये। कुछ भी कीजिये, इस तरहका सुधार ठक तो सकता नहीं। क्योंकि हिन्दू धर्ममें गंदगी तो बहुत फैल गयी है और अब चारों तरफ़ जाग्रति हो गयी है।

समझदारी इसमें है कि सुधारको धर्मकी शकल दी जाय। पर जहाँ सुधार अच्छा न लगे, वहाँ भी बहिष्कारमें तो बुराभी ही है।

मारवाड़ी जातिमें बुद्धि भी है और हिम्मत भी। उसने हिन्दुस्तानका भला भी किया है और बुरा भी। मित्रके भ्राते बुराभीकी बात कहना भी मेरा धर्म है। परमात्मा उन्हें इससे बचावे और उनका भला करे।

जिनका बहिष्कार हो, वे मर्यादामें रहकर विवेकसे जहरको बढ़नेसे रोकें और अपनी नीति पर क़ायम रहें।

ता० २-८-१९५५

६

जाति बाहर

जिस समाजके पंच बिना चिन्त्यारे, सिर्फ़ मोहके, वहमके, अज्ञानके या अंधीर्ष्याके वश होकर बहिष्कार करते हैं, उस समाजमें रहनेसे निकल जाना बेहतर है; क्योंकि जहाँ अेक भी सच्चे आदमीको समाज छोड़े वहाँ दूसरे सच्चे लोग कैसे रह सकते हैं ?

यह तो हुआ सुसूलकी बात। इस पर अमल सदा न हो सके तो भी यह याद रखना जरूरी है। देखा जाता है कि आजकल पंचोंकी तकलीफ़ बढ़ती जा रही है। अछूतको खिलाना जुर्म समझनेवाले पंच भी मौजूद हैं। अछूतको अेक पंगतमें बैठाने और उसकी राय देनेवाले हिन्दू पापी माने जाते हैं। ऐसे पापियोंके समाजमें हममें जो भी पुण्यात्मा हों, वे सभी शामिल हों जायें।

लेकिन बहिष्कार कैसे बर्दाश्त हो ? खाना न मिले, धोबीको बन्द करें, हजामको बन्द करें ! डॉक्टरको बन्द क्यों न करें ? अखीरमें मार डालना ही तो बाकी रहा न ! बहिष्कृत सुधारकमें मरने तक अटल रहनेकी शक्ति होनी चाहिये । अछूतोंकी ठेठ तक सेवा तो शुद्ध हुअे हिन्दू मरकर ही करेंगे । जातिमें खानेकी जरूरत भी क्या ? घर बैठे खुद पकाकर शान्तिसे क्यों न खाया जाय ? धोबी कपड़े न धोये, तो हाथसे धोकर पैसे बचाना चाहिये । हजामत हाथसे करनी तो आज मामूली बात है । लेकिन लड़की कहाँ ब्याही जाय ? और लड़केके लिअे लड़की कहाँ हूँदें ? अखर जातिमें ही लड़का या लड़की देखना है और वह न मिले तो संयम पाला जाय । अितने संयमकी शक्ति न हो, तो दूसरी जातिमें हूँदा जाय । उसमें भी न मिले तो जो न हो सके उसके बारेमें अुदासीन रहा जाय ।

वर्ण तो चार ही हैं । जातियाँ भले चार हों या चालीस हजार । उपजातियोंको तो मिला देना ही ठीक है । छोटे छोटे बाड़ोंसे हिन्दू धर्मका बहुत नुकसान हुआ है । जो वैश्य हैं वे सारे हिन्दुस्तानके वैश्योंमेंसे किसीसे भी नाता क्यों न जोड़ें ? गुजराती ब्राह्मण अपने जैसे आचार-विचार वाले किसी भी ब्राह्मणके यहाँ वर-कन्या क्यों न हूँदें ? अितना सुधार करनेकी भी हमारी हिम्मत न हो, तो हिन्दू धर्मके बहुत तंग हो जानेका डर है । बंगालकी लड़की गुजरातमें आये और गुजरातकी बंगालमें जाय, तो बिल्कुल बुरी बात नहीं है । वर्णको बचानेवाले अगर उपजातियोंको रखने चलेंगे, तो उपजातियाँ तो जाती ही रहीं, वर्णको और खो बैठेंगे ।

आज वर्ण भी छिन्नभिन्न तो हो ही गया है । विचारवान स्त्रीपुरुषोंको अिस विषयका मन्थन करनेकी पूरी जरूरत है । पहले तो गुजरातके वर्ण मिलकर अपना व्यवहार फैलावें, तो कितने आगे बढ़े समझे जायें ? सब वर्ण अपनी बहुतसी उपजातियोंको अेक नहीं कर सकते ? अगर विचार करने जितना अुत्साह भी उपजातियोंके पंचोंमें न रहा हो, तो व्यक्तियोंको पहल करनी चाहिये ।

लेकिन बात तो मुझे बहिष्कारकी करनी थी । अपजातियोंके बारेमें मैंने जो विवेचन किया है, वह बहिष्कृतोंकी शान्तिके लिअे किया है । जुल्म घरका हो या बाहरका, उसे मिटानेका अपाय अंक ही है । बहिष्कृतका रास्ता अभी तो बहुत ही सीधा है । लेकिन मान लीजिये कि हमारे मौजूदा वातावरणमें अपजातिसे निकाला हुआ मनुष्य वर्णसे भी निकल जाय, तो ? तो भी क्या हुआ ? अकेले खड़े रहनेकी शक्ति जुटा लेनेवाले सुधारक आजकल हिन्दुस्तानमें हर जगह देखे जाते हैं ।

लेकिन अकेले खड़े रहनेकी हिम्मतवाले जो शुद्ध आदमी हों, उनमें गुस्सा न होगा, द्वेष न होगा, बर्दाश्त होगी । वे जालिमका तिरस्कार न करेंगे, वे जालिमका भी भला चाहेंगे; 'और मौका मिलनेपर उसकी सेवा करेंगे । सेवा करनेका धर्म कोअी कभी न छाड़े । सेवा लेनेका हक तो है ही कहाँ ? धर्म तो कहता है : मैं सेवा ही हूँ । मुझे विधाताने अधिकार दिया ही नहीं ।' जिसे मिला नहीं वह खोये क्या ? बहिष्कृतको सेवा लेनेकी अिच्छा ही छोड़ देनी चाहिये । यह अजीब कानून है जखर कि अैसे लोगोंको सेवा मिल ही जाती है । लेकिन सेवकको अिससे कोअी सरोकार नहीं । सेवा मिलनेकी आशासे जो सेवा छोड़नेका दावा करते हैं, वे तो डाकू हैं और वे नाअुम्मीद ही रहेंगे ।

अछूतोंकी सेवा करनेवालो, रेतकी तरह नम्र रहकर जो तुम्हें रौंदे अुसे रौंदने दो । धरती भी पैरों तले कुचली जाती है, फिर भी हमें अभयदान देती है । अिसीलिअे हम अुसे माँ कहते हैं और रोज सुबह अुठकर अुसकी स्तुति करते हैं : 'समुद्र जिसका कपड़ा है, पहाड़ जिसकी छातियाँ हैं, विष्णु जैसे रक्षक जिसके पति हैं, अुसे करोड़ों नमस्कार हों । हे माता, हमारे पैर तुम्हें छूते हैं, अुसके लिअे हमें माफ करना ।' जिन सेवकोंने अैसी मातासे बड़ियासे बड़िया नम्रता सीखी है, अुनका बहिष्कार हो तो अुसमें अुनका कोअी नुकसान नहीं ।

बहिष्कार हो तो ?

अेक भाभी लिखते हैं :

“ आजकल कोभी कोभी जाति अछूतपन न माननेवालोंको, भले ही वे कितने ही अच्छे गुणोंवाले हों, जातिसे निकाल देती है। पर शास्त्रोंने जिसे बड़ा भारी पाप माना है उसके बारेमें पंच कुछ नहीं करते। जैसे, लड़की बेचना शास्त्र महापाप मानते हैं। पर अिस बारेमें पंच कुछ नहीं करते। और अछूतपनके बारेमें दोषी समझे जानेवालोंको बिना पूछे और बिना कोभी सफाई माँगे जातिसे निकाल देते हैं। अितना ही नहीं, निष्पक्ष निर्णायकसे फैमला करवानेकी बात भी अुन्हें मंजूर नहीं। अैसे जालिम पंचोंको अदालतमें घसीटा जाय या नहीं ? ”

अिसका जवाब मैं तो अेक ही दे सकता हूँ : पंच कितना ही जुल्म करें, फिर भी अुन्हें अदालतमें न घसीटा जाय। अुनकी जो मरज़ी हो सज़ा दें। वह सज़ा भोगनेसे पंचोंका गुस्सा कम होता है और वे खुद पछताते हैं। फिर, जहाँ पंच अन्याय करते हैं, वहाँ तो बहिष्कार स्वागत करनेकी चीज़ माननी चाहिये। जिस जातिमें कन्याविक्रयका अत्याचार होता हो, जिस जातिमें ढोंग हो, जिसके पंच शराब मांस खाने पीनेको दरगुज़र करते हों, अुस जातिमें रहनेसे फ़ायदा हो ही नहीं सकता। जाति तो रूढ़ि है, धर्म नहीं। जातिमें रहकर मनुष्य कितनी ही सहूलियतें पाता है। लेकिन जहाँ जातिकी नीति बिगड़ जाय, वहाँ अुन सहूलियतोंको लेना न चाहिये। जिस दलीलसे हमने सरकारके साथ असहयोग किया, अुसीको जाति पर लागू करके अुसके साथ भी असहयोग हो सकता है।

लेकिन यहाँ तो वह सवाल ही नहीं। यहाँ तो जाति बहिष्कार करती है। अिस बहिष्कारको अच्छा मौक़ा समझकर अुसका स्वागत करना चाहिये। लेकिन अिस तरह अच्छा मौक़ा वही मान सकता है, जिसने अपना धर्म पाला है, जातिकी सेवा की है और जातिके नीति बढ़ानेवाले हुक्मको हमेशा खुशीसे माना है। संयमी ही बहिष्कारका स्वागत कर सकता

है। मनमानी करनेवाला बहिष्कारसे तंग आ जाता है। लेकिन अछूतपन मिटाना स्वच्छंदीका नहीं, संयमीका काम है। अछूतपनको मिटाना भोगोंको बढ़ानेके लिये नहीं, बल्कि सेवाके मौके बढ़ानेके लिये है; सेवासे किसीको बहिष्कृत न रखनेके लिये है।

ता० २४-५-'२५

८

खुदको ही करना पड़ेगा

संभातसे एक नौजवान लिखते हैं :

“हमारी जैन भावसार जातिमें बहुतों ‘नवजीवन’ के पढ़नेवाले हैं। जिसलिये ‘नवजीवन’ में आनेवाले समाज सुधारके लेखोंको पढ़कर कुछ समयसे उन्हें पुरानी कुरीतियोंसे नफ़रत पैदा हुआ थी और वक्त आने पर उन रिवाजोंको मिटा देनेकी अच्छा थी। थोड़े दिनोंकी कोशिशसे मौसर या मृत्यु-भोज और पहले गर्भके समयके भोजनमें शरीक न होनेकी २०-२५ जवानोंने प्रतिज्ञा या अहं किया और बड़े माने जानेवाले लोगोंका गुस्सा सह लिया। औरोंको भी समझाया, मगर वे जिस तरहके भोजन छोड़नेकी तैयार न थे। अब प्रतिज्ञा लेनेवाले तो खूब मजबूत हैं, पर उनकी औरतें माँ बाप वर्गका घरके लोग उन्हें छोड़कर उन भोजनोंमें शरीक होते हैं। क्या जिस तरह खानेकी जाना उनके लिये अच्छा समझा जाय? आप कुछ ऐसा लिखेंगे, जिससे उनपर असर पड़े? बिन मामलोंमें पत्नीकी अपने पतिकी नज़र करनी चाहिये या नहीं? जैन खानोंमें शरीक होनेमें जैन साधु किसी भी तरहका हर्ज नहीं समझते। क्या यह ठीक है?”

शादी या ऐसे ही दूसरे मौकोंपर दिया भोजन में माफ़ीके लायक समझता हूँ। पहले गर्भके समय दिया हुआ खाना शर्मकी बात मानता हूँ। और मरने पर खिलाना पाप गिनता हूँ, फिर भले ही वह बारहवेंका हो या तेरहवेंका, बूढ़ेके बाबत हो या जवानके। मुझे तो सभी जीमन या भोज फ़जूल और जंगली लगते हैं। शरीरकी रोजमर्राकी जरूरतोंको हम कैसे भोगका साधन बना डालते हैं, यह मेरी बुद्धि समझ नहीं सकती।

भले ही ऐसी किसी चीज़को मेरी कमजोरी सह भी ले, तो भी अगर हम रुढ़िके गुलाम न बन गये हों, तो हमें मृत्यु-भोज और गर्भ-भोजमें तो हरगिज्ञ न जाना चाहिये । अच्छी बात तो हमारा अपना शुद्ध आचरण है । मगर हम करते हैं उसी तरह माँ बाप, स्त्री या बड़े लड़के लड़की न करें, तो उसका दुःख न होना चाहिये । और अनुपर जन्म न होना चाहिये । हम यकीन रखें कि हमारा अपना आचरण शुद्ध रखनेसे उसका चेप दूसरोंको भी लगेगा । मुझे पता नहीं जैन साधु क्या करते हैं । लेकिन इसमें शक नहीं कि समाजकी कुरीतियोंकी वे परवाह न करते हों तो यह ठीक नहीं ।

ता० २९-७-'२८

९

विद्यार्थियोंका सुन्दर सत्याग्रह

मैं 'नवजीवन'में बहुत बार लिख चुका हूँ कि सत्याग्रह सब जगहके लिअे होनेके कारण जैसे राजनीतिमें वैसे ही समाज और धर्मके मामलोंमें भी किया जा सकता है । जैसे हाकिमोंके खिलाफ़ वैसे ही समाजके, कुटुम्बके, माँके, बापके, स्त्रीके, और पतिके खिलाफ़ यह दिव्य शस्त्र अस्तेमाल किया जा सकता है; क्योंकि इसमें हिंसाकी तो बू तक नहीं हो सकती । और जहाँ अहिंसा यानी प्रेम ही प्रेरणा देनेवाली चीज़ है, वहाँ किसी भी हालतमें निडर होकर इस हथियारको चलाया जा सकता है । इस तरहका प्रयोग धर्मजके साहसी विद्यार्थियोंने धर्मजके समाजके खिलाफ़ कुछ दिन पहले ही करके बता दिया है । उसके बारेमें कागज़ मेरे पास आये हैं । उनमें से नीचे लिखी हकीकतें मिलती हैं ।

थोड़े दिन पहले अेक गृहस्थने अपनी माँके बारहवें पर जाति-भोज दिया । भोजके पहले दिन नौजवानोंमें इस पर बड़ी चर्चा हुआ । उन्हें और कुछ गृहस्थोंको इस तरहके खानोंसे नफ़रत तो पैदा हो ही गयी थी; और विद्यार्थियोंके मण्डलने तय किया कि इस बार कोअी

क्रदम ज़रूर उठाय़ा जाय । आख़िर बहुतोंने नीचेकी तीनों या अ़नमेंसे अ़ेक या दो प्रतिज्ञाअें लीं :

“ भोमवार ता. २३-१-१९२८ को बारहवेंके सिलसिलेमें जो बड़़ा भोज होनेवाला है अ़स तरहके बड़े भोजमें (१) हम पंगतमें बैठकर परोसा लेकर नहीं खायेंगे, (२) अ़िस रूढ़िके खिलाफ़ सख़्त विरोध बतानेके लिये अ़स वक़्तके लिये अ़पवास रखेंगे ; (३) अ़िस काममें हनारे घर या कुटुम्बकी तरफ़से जो भी तकलीफ़ आय़गी अ़से शांति और राजीमुखीसे सहेंगे । ”

और अ़िसलिये भोजके दिन बहुतेरे विद्यार्थियोंने, जिनमें कितने ही छोटे बच्चे थे, अ़पवास किया । अ़िस कामसे विद्यार्थी मण्डलने बड़े माने जानेवाले लोगोंका गुस्सा अपने सिर ले लिया । अ़ैसे सत्याग्रहमें विद्यार्थियोंको माली जोखम भी कम नहीं अ़ुठाना पड़ती । बड़़ोंने विद्यार्थियोंको मिलनेवाली आर्थिक सहायता और मकानोंकी सहूलियत वापस ले लेनेकी भमकी दी । पर विद्यार्थी पक्के रहे, भोजके दिन २८५ विद्यार्थियोंने भोजनमें भाग नहीं लिया और बहुतोंने तो अ़पवास भी किया ।

अ़िन विद्यार्थियोंको धन्यवाद मिलना चाहिये । मैं अ़ुम्मीद रखता हूँ कि हर जगह विद्यार्थी समाज सुधारके कामोंमें आगे बढ़कर हिस्सा लेंगे । जैसे स्वराज्यकी कुंजी विद्यार्थियोंकी जेबमें है, वैसे ही समाज सुधार और धर्मरक्षाकी कुंजी भी वे अपनी जेबमें लिये फिरते हैं । हो सकता है कि लापरवाहीके कारण अपनी जेबमें पड़ी हुअी चीज़का अ़न्हें पता न हो । पर मुझे अ़ुम्मीद है कि धर्मजके विद्यार्थियोंका काम देखकर दूसरे विद्यार्थी अपनी शक्तिका माप कर लेंगे । मेरे ख़यालसे अ़स स्वर्गवासी बहनका सच्चा श्राद्ध तो नौजवानोंने अपने अ़पवाससे किया है । जिसने भोज दिया अ़ुसने अपना रुपया बर्बाद किया और ग़रीबोंके सामने ख़राब मिसाल रखी ।

अमीरोंको परमेश्वरने रुपया दिया है तो वे अ़ुसे परमार्थके काममें लगायें । अ़न्हें समझना चाहिये कि ग़रीब शादी या ग़मीके मौकोंपर जातिको ख़िला नहीं सकते । अ़न्हें यह भी जानना चाहिये कि अ़िस ख़राब रूढ़िसे बहुतसे ग़रीब पामाल हो गये हैं । जाति-भोजमें जो

रुपया खर्च हुआ वही गरीब विद्यार्थियोंके, गरीब विधवाओंके, गोरक्षाके, खादीके या अछूतोंके लिये लगाया जाता तो वे बड़ निकलते और मरे हुअेकी आत्माको शान्ति मिलती । भोजन तो भुला दिया गया, उसका किसीको लाभ नहीं मिला और विद्यार्थियों व धर्मजके दूसरे समझदार लोगोंको उससे दुःख हुआ ।

कोअी यह शंका न करे कि जिस भोजके लिये सत्याग्रह हुआ वह भोज बन्द न रहा, तो सत्याग्रह किस कामका । विद्यार्थी खुद जानते थे कि उनके सत्याग्रहका तुरन्त असर होना बहुत कम सम्भव है । लेकिन उनमें जाप्रति क्रायम रहेगी तां हम यह मान सकते हैं कि दुबारा किसी सेठकी बारहवाँ करनेकी हिम्मत न होगी । अिसके लिये सदा धीरज और आग्रहकी जरूरत होती है ।

क्या पंच माने जानेवाले बूढ़े लोग समयका विचार नहीं करेंगे ? वे रुढ़िको समाज या देशकी तरक्कीका अेक जरिया माननेक बजाय कब तक उसके गुलाम रहेंगे ? वे अपने बच्चोंको ज्ञान तो लेने देंगे फिर वे उस ज्ञानको अिस्तेमाल करनेसे कब तक रोक सकेंगे ? धर्म अधर्मका विचार करनेवालोंमें जो शिथिलता है उसे छोड़कर वे हांशियार होकर सच्चे पंच कब बनेंगे ?

ता. २६-२-'२८

मरनेके बादका भोजन

मरनेके बाद जो जातिभोज दिया जाता है, उसे मैंने जंगली बताया है । उस बारेमें एक साहब बड़े दुःखसे लिखते हैं :

“ आप सनातनी हिन्दू होनेका दावा करते हैं । आप गीताजी और रामायणके पुजारी हैं । फिर भी मृत्युभोज आदि जो क्रियायें की जाती हैं, भुन्हें जंगली कैसे कह सकते हैं, यह समझमें नहीं आता । शास्त्र तो कहने हैं कि मरनेके बाद ब्राह्मणोंको खिलानेसे मरे हुएओंको अच्छी मृति मिलती है, भुन्हें तसल्ली होती है । अब मैं भिममेंसे किसे सच्चा मानूँ ?

मैं कभी बार लिख चुका हूँ कि जो कुछ संस्कृतमें लिखा हो, उस सबको धर्मशास्त्र न मानना चाहिये । अिसी तरह यह भी नहीं मानना चाहिये कि धर्मशास्त्र समझी जानेवाली मनुस्मृति वगैरा मानी हुआ किताबों या धर्मग्रंथोंमें जो कुछ आजकल हम पढ़ते हैं, वह सब असली लिखनेवालेका ही लिखा है; या ऐसा हो तो भी वह सब आज अक्षरशः मानने लायक है । मैं तो नहीं मानता ।

कुछ असूल सनातन हैं । उन असूलोंको माननेवाला सनातनी है । लेकिन यह माननेकी कोअी वजह नहीं कि उन सिद्धान्तोंसे जो जो आचार या अमल जिस जिस जमानेके लिअे बनाये गये हों, वे सभी दूसरे जमानेमें भी सच ही हैं । जगह, वक्त और हालातके कारण आचार बदलते हैं । मरनेपर भोज देनेका पहले किसी समयमें अर्थ रहा होगा, लेकिन आज हमारी बुद्धि उसको समझ नहीं सकती । जहाँ बुद्धि लगायी जा सकती है, वहाँ श्रद्धाकी गुंजायश नहीं होती । जो चीज बुद्धिसे परे है, उसीके लिअे श्रद्धा कामकी है । यहाँ तो बुद्धिसे हम देख सकते हैं कि मरनेके बाद भोजन करानेमें धर्म नहीं । अनुभवसे हम देख सकते हैं कि दूसरे धर्मोंमें अिस चीजको जगह ही नहीं दी गयी । तब हिन्दूधर्ममें ऐसे भोजोंको जगह देनेके लिअे संस्कृतके श्लोकोंके सिवा हमारे पास दूसरे मजबूत कारण होने चाहियें । हिन्दू धर्मशास्त्रोंके

या यों कहिये कि सभी धर्मशास्त्रोंके असूलोंके साथ जैसे भोजोंका कोअी मेल नहीं बैठता । जैसे भोजोंसे होनेवाले नुकसान हम आँखोंसे देख सकते हैं । जैसे प्रत्यक्ष प्रमाणोंके सामने संस्कृतके श्लोक किस कामके ? मृत्यु-भोजको न बुद्धि कबूल करती है, न दिल करता है, और न दूसरे देशोंका तजरबा करता है । जैसे भोजको जंगली माननेके लिअे अिससे ज्यादा कारण मेरे पास नहीं और न किसीके पास होनेकी आशा रखी जा सकती है । जैसे सभी पुरानी बातोंको झूठ माननेवाले भूल करते हैं, वैसे ही सच्ची समझनेवाले भी गलती करते हैं । पुरानी हो या नअी, सभी चीजोंको बुद्धिकी कसौटीपर चढ़ाना ही चाहिये; और जो चीज असपर न चढ़ सके, उसे बिलकुल छोड़ देना चाहिये ।

ता० २०-६-२६

पहले गर्भ वगैराके भोज

जबुसरसे श्री मणिलाल छत्रपति लिखते हैं कि अुनके घरमें पहले गर्भका मौका आनेपर अुन्होंने अन्तमें जाति भोज न देनेकी हिम्मत की है । जिसपर में अुन्हें बधायी देता हूँ । कांग्रेसका काम करनेवाले सेवकोंमें अितनी हिम्मत होना कोअी अनोखी बात समझनी ही न चाहिये । अैसी हिम्मत होनके लिये अेक ही बातकी जरूरत हांती है, और वह है जाति बाहर होनेकी निडरता । जाति बाहर होनेका मतलब अितना ही है कि हम जाति भोज वगैरामें न जा सकें और लड़के लड़कीका लेनदेन जातिमें न कर सकें । जब खानेका ही बहिष्कार करना है, तो खानेका न्योता न मिलना तो और भी अच्छा, जंजालसे छूटे । और लड़के लड़कीकी सगाअी अुस जातिमें न हां तो सहजमें जातिके बाड़े तोड़े जा सकते हैं । अगर देशको अुठाना है, तो ये बाड़े तो तोड़ने ही पड़ेंगे । अिस तरह श्री मणिलाल छत्रपति जैसे सुधारकोंको किसी भी बातका डर रखनेकी जरूरत ही नहीं ।

ये भोज सभ्य आदमीको जंगली बनाते हैं, गरीबोंको कुचलते हैं और देशको कलंक लगाते हैं । यह हमें जरा भी शोभा देनेवाली बात नहीं कि रुपये पैसेसे सुखी लांग भी खानके पीछे पागल हो जायें । अिसलिये श्री मणिलाल छत्रपति जैसे सुधारक जैसे जैसे बढ़ते जायेंगे, वैसे वैसे कुरीतियाँ कमजोर पड़ती जायेंगी । अैसे भोजोंसे बचनेवाले रुपयेका कुछ हिस्सा सुधारकोंको सार्वजनिक काममें या जो लोग जातिके बाड़ेमें ही रहना चाहते हों, अुनकी सात्विक सेवामें लगाना चाहिये । जहाँ पंच अज्ञानके वश होकर चलते हैं, वहाँ वे अपना बड़ा पद छोड़ देते हैं और अिज्जतके लायक नहीं रहते । अिसलिये जातिके सुधारमें लगाया हुआ रुपया भी सीधी तरह काममें आये, अिसकी सावधानी दान करनेवालेको रखनी चाहिये ।

कर्ज करके भोज

वड़वाणसे अेक दुकानदार लिखते हैं :

“मैं आजकल अनाजकी दुकान चला रहा हूँ। बहुतैर अछूत भाअी मेरे यहाँसे अनाज लेते हैं। अुन लोगैके साथ काम पढ़नेसे मुझे बहुतसे अनुभव हो रहे हैं। अेक अछूत भाअी हैं। अुनके दो बड़े भाअी मर गये हैं। अुनके बालबच्चे बहुत हैं। विधवाअें अिधर अुधरका काम करके बच्चोंको पालती हैं। असि बीचमें बूढ़ा मर गया। अुसके पीछे अुसका अेक लइका है। अुसके पास अनाजके दाम भी देनेको नहीं हैं। पर जाति अुसे पाँच सौ रुपया कर्ज करके मिठाअी और नमकीनका भोजन करानेको कइ रही है। असि तरह अछूत भाअियोंमें जो ब्याज खाअू लोग हैं, वे अैसा काम कराते हैं। असिका क्या अुपाय है ?”

अिसका अेक अुपाय तो सीधा है, पर कठिन है। अूँचे कहानेवाले वर्णके लोग जो करते हैं, वही अछूत भी करते हैं। असिलिअे ‘अूँचे’ वर्ण भोज देना छोड़ दें, तो अछूत भाअी ‘अूँचे’ वर्णसे सीखी हुआ बुरी आदतें सहजमें छोड़ देंगे, पर अैसा शुभ अवसर आनेमें ढेर तो लगेगी ही। असिलिअे अभी तो यही रास्ता है कि अछूत भाअियोंको अपनी हालतकी जानकारी कराकर अुनसे सुधार काराया जाय। बहुत लोग तो डरके मारे मौसर करते हैं। अछूतोंमें भी जाति बाहर होनेका डर तो है ही। सच पूछा जाय तो ‘अूँचे’ वर्णसे ज्यादा डर है। ‘अूँचे’ वर्णके जाति बाहर हुआे सज्जनके पास सारी हिन्दू दुनिया है। लेकिन जाति बाहर हुआे अछूतका सिर्फ भगवान ही बेली है, या वह स्वार्थके मारे दूसरा धर्म अपना लेता है। जब अछूत भाअियोंको अपना ज्ञान होगा, तब सुधार करनेकी अुनकी शक्ति ‘अूँचे’ वर्णकी शक्तिसे बहुत बढ़ जायगी। ‘अूँचे’ वर्णके रास्तेमें दूसरे स्वार्थ और लालच आ जाते हैं; अछूतोंमें समझ और निडरता आ जानेके बाद अेक भी चीज़ आड़े नहीं आ सकती। अुनमें अैसी समझ और निडरता लाना ‘अूँचे’ वर्णका धर्म है, प्रायश्चित्त है।

जाति भोज

यह महीना शायदियोंका है। व्याहके सिलसिलेमें जाति भोज वगैरा भारी खर्चके काम किये जाते हैं। जिसके पास रुपया है, वह जाति भोज वगैरामें खर्च न करे, यह कहना तो ज्यादाती समझी जायगी। लेकिन ऐसे भोज आज फ़र्ज़ बन गये हैं। इससे कुटुम्बके लिअे उनका बोझ असह्य हो गया है। ऐसे भोज अपनी खुशीकी चीज़ होने चाहियें। अितना ही नहीं, बल्कि धनवान कुटुम्बोंको खुद संयम करके इस बारेमें अुदाहरण रखना चाहिये। बचे हुअे रुपयका अुपयोग शिक्षाके लिअे या समाजकी तरक्कीके दूसरे कामोंमें हा, तो अुससे अुस जातिको और इस तरह सारी जनताको फायदा पहुँचे। शादीके वक़्त जाति भोजका रिवाज बन्द होना सिर्फ़ अच्छा ही है, मृत्यु-भोज बंद करना जरूरी है। मृत्यु भोजमें तो मुझे पाप ही दीखता है। इस भोजमें मुझे कुछ भी रहस्य नहीं दिखायी देता। भोजन आनंदका मौक़ा माना गया है। मौत रंजका मौक़ा है। समझमें नहीं आता कि अुस वक़्त भोज कैसे दिया जाय। सर चिनुभायीके मरने पर जो भोज दिया गया था, अुसमें स्वर्गवासीके मानकी खातिर मैंने हाजिरी दी थी। अुस वक़्तका नज़ारा, अुस वक़्तका खानेवाली अलग अलग जातियोंका झगड़ा, खानेवालोंकी मनमानी वगैरा बातें आज भी मेरी आँखोंमें नाच रही हैं। अुनमें मुझे मरनेवालेके लिअे कहीं भी आदर न दिखायी दिया। शोकको तो वहाँ जगह ही कहाँ! ऐसे मुधारके लिअे भी समय चाहिये, इससे रुढ़िकी ताक़त और हमारी ढिलायी जाहिर होती है। ऐसा मुधार पंचायत न करे तो भी व्यक्ति तो कर ही सकता है। पंचायतोंकी हालत आज दयाजनक है। अक्सर वे मुधार चाहती हैं, पर करत डरती हैं। हिम्मतवाले शास्त्र पहल करके मुधार चाहनेवाली पंचायतोंको बल पहुँचाते हैं और मुधारका दरवाज़ा खोलत हैं।

मौसर या कारज

अेक भाअी अपने पर आया हुआ धर्मसंकट बयान करते हैं । अुनकी माँके मरने पर जातिवाले अुनसे मौसर करनेका हठ कर रहे हैं । अुनका खुद अिसमें विश्वास नहीं । वे मानते हैं कि अैसे भांजोंसे नुकसान होता है । दूसरी तरफ़, मौसर या कारज न करे तो जातिवालोंका जी दुखे । अैसे संकटके वक़्त क्या किया जाय, यह सवाल है ।

समाजमेंसे पुरानी वुराअियाँ निकालनी हाँ, तो पहल करनेवालेपर अैसे धर्म संकट आया ही करते हैं । विनय और दृढ़ता ये दो शतें अुस वक़्त काम आती हैं । विराधियोंका विराध विनयके साथ सहना और अपना निश्चय मज़बूतीसे कायम रखना चाहिये । जातिवालोंको खुश करनेके लिये भी हमें अधर्म न करना चाहिये । मरनेके बाद दान करनेका रिवाज सभी जगह जान पड़ता है । दान करनेके अिरादेसे न हो तो भी अिसलिये कि हमें कोअी कंजूस न समझे या जातिकी रायके लिये हमारी लापरवाही न दीखे, हम जाति-भोजमें शक्तिभर या अुससे भी ज़्यादा जो खर्च करते हैं वह जातिके बच्चोंकी शिक्षामें ही लगायें तो पूरा फ़ायदा हो । झूठे घमण्डसे या डरसे हम जो रुपया शादी गमीके मौक़ों पर लगाते हैं, वह सब या अुसका बड़ा हिस्सा बचाना सीखें, तो सदा रुपयेकी तंगीका जो सवाल सामने रहता है, वह न रहे । पर अीश्वर जाने यह कैसी माया है कि ज्ञानी भी अैसे मौक़ों पर पामर बनकर, ज्ञान भूलकर और क़र्ज़ करके मौसर करते जा रहे हैं । पर अिस खादीकी सादगीके ज़मानेमें अैसे खर्चोंसे हम सब बच सकते हैं ।

रोना पीटना

अस छोटेसे कमरेमें मैंने जिस धीरज और अश्वरभावका तजरबा किया, उसके साथ हमारे रोंने पीटनेके रिवाजका मुकाबिला किये बिना मुझसे नहीं रहा गया। मैंने बहुतरी हिन्दू मौतें देखी हैं। बीमारके शरीरमें अभी तो जान बाकी है, तो भी उसके लिये रामनामका जप होनेके बजाय रोंनाचिल्लाना शुरू होते मैंने कभी बार देखा है। मौतके बाद रोंने पीटनेकी सभी धर्मोंमें मनाही है। हिन्दू धर्म तो मानता है कि जन्म और मृत्यु अक ही हालतकी दो शक्तें हैं। अतना हांत हुआ भी रोंने पीटनेका जंगली और नास्तिक रिवाज मैंने हिन्दुओंके सिवा दूसरे किसी धर्ममें नहीं देखा। मैंने पारसी, यहूदी, असीसी और मुसलमान मौतोंके वक्त हाज़िरी दी है, लेकिन रोंना पीटना मैंने कहीं नहीं देखा। मैं चाहता हूँ कि हिन्दू कुटुम्ब रोंने पीटनेके घातकी, जंगली और बेकार रिवाजको अधर्म जानकर तुरन्त बन्द कर दें।

रोटीबेटी

जाति भोज रोकनेसे भी शायद ज्यादा ज़रूरी सवाल जातियोंमें आपसमें रोटीबेटी व्यवहारको उत्तेजन देनेका है। वर्णाश्रम ज़रूरी है, पर कभी अपवर्ण हानिकारक हैं। जहाँ रोटी व्यवहार है, वहाँ बेटी व्यवहार होना चाहिये। अस बारेमें दो मत नहीं, ऐसा कह सकते हैं। यह भी देखा जाता है कि ऐसी शादियाँ खासी तादादमें हुअी हैं। यह सुधार ऐसा है कि अब रोंका नहीं जा सकता। असलिये यह बहुत ज़रूरी है कि सयाने पंच ऐसे सुधारको उत्तेजन दें। जितना अंकुश समयको पसन्द हो उससे ज्यादा अगर पंच लोग रखेंगे, तो उनकी बात जा सकती है। सुधारकोंकी शोभा असमें है कि ऐसा

सुधार पंचोंके ऊपर होकर भी करना पड़े तो उसमें वे विनय रखें । ऐसे सुधारक भी देखे गये हैं जो पंचोंको तुच्छ मानकर अन्हें ललकारते हैं कि आपसे जो हो सो कर लेना । ऐसी अद्वतता करनेसे सुधारमें बाधा पड़ती है; और जहाँ पंचायत बिल्कुल कमजोर हो गयी हो और उसके लिअे सज़ा देना नामुमकिन हो गया हो, वहाँ सुधारक सुधारक न रह कर मनमानी करनेवाला बन जाता है । मनमानी सुधार नहीं । उससे समाज अठता नहीं, गिरता है ।

ता० ११-५-'२४

१७

राष्ट्रीय छात्रालयोंमें पंक्ति भेद

काकासाहब कालेलकरकी बढ़ती हुयी डाकमें कभी तरहके संवाल आते हैं । उनमें अेक खत पंक्ति-भेदके बारेमें था । उसका जो जवाब अन्होंने दिया है, उसकी नक़ल अन्होंने मेरे पास भेज दी है । उनके विचार राष्ट्रीय छात्रालयोंको रास्ता दिखानेवाले हैं, अिसलिअे ज्याँ के त्याँ नीचे देता हूँ :

“यह पूछकर आपने ठीक किया कि विद्यापीठके छात्रालयमें खानेको अलग अलग पंगतोंमें बैठाया जाता है या नहीं । आप जानते हैं कि विद्यापीठके मक़सदमें नोचेको कलम है : ‘विद्यापीठके मातहत संस्थाओंमें सभी चाखू धर्मोंके लिअे पूरा आदर होगा और विद्यार्थियोंको आत्मके विकासके लिअे धर्मका ज्ञान अहिंसा और सत्यको ध्यानमें रखकर दिया जायेगा’ ।

“आप यह भी जानते हैं कि विद्यापीठ अछूतपनको कलंक और पाप मानता है । विद्यापीठमें स्वराज्यकी असहयोगी शिक्षा पानेकी अिच्छावाले और खादोकी माननेवाले क़िसी भी धर्मके विद्यार्थी आ सकते हैं । यह नियम नहीं है कि छात्रालयमें क़िसी खास वर्गके या पंथके ही विद्यार्थी आ सकते हैं । आम लोगोंमें जो आचार धर्म आज खुले तौरपर पाला जाता है, उसका विरोध करना विद्यापीठका मक़सद नहीं । अिसलिअे छात्रालयमें ब्राह्मण रत्नोअियेक ह्रासते ही रसोअी होती है । शौचाचार या मफ़ाअेके धर्ममें रसोअी अेक खास तरीक़े पर ही तैयार होनेका जो आग्रह रखा जाता है, वह

अस तरह निभाया जाता है। मगर अलग अलग पंगत रखना शौचाचारका सवाल नहीं, बल्कि सामाजिक प्रतिष्ठाका सवाल है, अंचनीचेके शास्त्रका सवाल है। मैं जिस बातका जरूर विचार करूंगा कि खाते वक्त मुझे किस तरहका भोजन मिलता है और उसके बनानेमें किम तरहकी सफाई रखी जाती है। मगर मैं जिसका ज्यादा विचार नहीं करूंगा कि इसी तरहकी खुराक में पास बैठकर खानेवालेके धार्मिक विचार कैसे हैं या उसके आचार कैसे हैं, क्योंकि मैं अिज्जतके घमण्डको नहीं मानता। अिज्जतके घमण्डमें धर्मका तत्व नहीं है। अमेरिकामें गोरकी पंगतमें कोअी हत्थी बैठे, तो गोरको ऐसा लगेगा कि उसका दरजा घट गया है। गिरे हुअे राष्ट्रके हम लोग आपसमें अंचनीचेका घमण्ड रखकर ऐसा ही भेद पैदा करते हैं, यह करुणाजनक दृश्य न होता तो हास्यरसका अजीब नमूना ही माना जाता।

“पंक्ति भेदके बारेमें छात्रालयमें कोअी खास नियम नहीं। विद्यार्थी अपने आप अेक साथ बैठते हैं। अध्यापक तो कोअी भी पंगतमें फर्क करना ठीक नहीं समझते। इसलिये विद्यार्थी भी अपने आप उसी तरह करते हैं। दो तीन विद्यार्थी अपने माँबापके हठके कारण रसोअीमें जहाँ रसोअिये खाते हैं वहीं बैठकर खाते हैं। मगर अिम रिवाजको विद्यापीठकी तरफसे अुत्तेजन नहीं मिल सकता। खुराककी सफाई पर आज जितना ध्यान दिया जाता है, उससे भी ज्यादा दिया जा सकता है। पर पंक्तिभेद विद्यापीठके लिये अच्छा नहीं, क्योंकि विद्यापीठ मानता है कि यह भेद घमण्डसे पैदा हुअी शूठी अिज्जत पर खड़ा हुआ है। धर्मका शुद्ध वातावरण कायम रखनेकी विद्यापीठ हमेशा कोशिश करेगा।”

काकासाहब फूँक फूँक कर क्रदम रखना चाहते हैं, चूँकि वे माँबापका या विद्यार्थियोंका जहाँतक हो सके जी नहीं दुखाना चाहते। इसलिये कहते हैं कि : “छात्रालयमें ब्राह्मण रसोअिये हाथसे ही रसोअी होती है। शौचाचार के धर्ममें रसोअी अेक खास तरीकेपर ही तैयार होनेका जो आग्रह रखा जाता है, वह अिस तरह निभाया जाता है। मेरी राय तो यह है कि ब्राह्मण रसोअियेका आग्रह बहुत समय तक रखना नामुमकिन है। अैसी तो कोअी बात नहीं कि जिस अर्थमें यहाँ ब्राह्मण शब्द काममें लिया गया है अुन ब्राह्मणोंसे ही शौचाचारका पालन होता है। यह भी नहीं कि अैसे ब्राह्मणोंसे शौचाचारका पालन होता ही है। गंदगीसे भरपूर, तंदुरुस्तीके

नियमोंको तोड़नेवाले ब्राह्मण रसोअिये मैंने तो कितने ही देखे हैं; दो आँखोंवाले किस अिन्सानने नहीं देखे हंगे ? शौचाचारमें होशियार, तंदुरुस्तीके क्रायदे जाननेवाले और पालनेवाले अब्राह्मण रसोअिये भी मैंने बहुत देखे हैं । अिसलिअे अगर ब्राह्मण शब्दके असली मतलबको ध्यानमें रखकर जो शौचाचारको पाले वही ब्राह्मण माना जाय, तो सब राष्ट्रीय छात्रालय आसानीसे काकासाहबका नियम पाल सकेंगे । जो जन्मसे ब्राह्मण है उसीको ब्राह्मण माना जायगा, तब तो शौचाचारको पालनेवाले ब्राह्मण रसोअिये बहुत नहीं मिलेंगे; और जो भिल्लेंगे वे अितने मँहँगे मिलेंगे और अितने सिर चढ़ेंगे कि अुन्हें रखना और निभाना लगभग असम्भव हो जायगा ।

विद्यापीठ सत्य और अहिंसाकी आराधना करता है । अिसलिअे हमारे छात्रालयोंमें जैसी हालत हो अुसे वैसी ही अाहिर करनी चाहिये, अन्दर या बाहर आँखोंके आड़े कान नहीं किये जा सकते । अिसीलिअे काकासाहबने साफ़ कर दिया है कि विद्यापीठके छात्रालयमें पंक्तिभेदके लिअे जगह नहीं । पंक्तिभेदके गर्भमें ही अूँचनीचका भेद है । वर्णभेदके साथ अूँचनीचका कोअी ताल्लुक नहीं । अूँचेपनका दांवा करनेवाला ब्राह्मण नीचे जाता है और नीच बनता है । अपनेको नीच माननेवाले और नीचे रहनेवालेको दुनिया अूँची जगह देती है । जहाँ मोक्ष आदर्श है, जहाँ अहिंसा सबसे बड़ा धर्म है, जहाँ आत्मा आत्मामें कांअी फ़र्क़ नहीं, वहाँ अूँचेपन और नीचेपनकी गुंजायश ही कहाँ ? अिसलिअे राष्ट्रीय छात्रालयोंके बारेमें मेरी रायसे तो अितना ही कहा जा सकता है कि वहाँ शौचाचारके क्रायदे पूरी तरह पालनेकी कोशिश होगी, यानी ब्राह्मणका सच्चा धर्म अुनका आदर्श रहेगा; आडंबरसे भरा और नामका ब्राह्मणधर्म पालनेका आदर्श नहीं हो सकता, क्योंकि वह बुराअी है और अिसलिअे छोड़नेकी चीज़ है ।

नयी विधियाँ

देशबन्धुके अन्तकालके सिलसिलेमें जो सभाओं वगैरा हुआ थीं, उनमें बहुत जगह लोगोंने मामूली क्रियाओंके अलावा अपने माफिक होने-वाली कुछ नयी बातें भी की थीं। बंगालमें बहुत जगह कीर्तन हुआ था। कहीं गरीबोंको खिलाया गया था और कहीं कहीं लोगोंने स्नान वगैरा करके धार्मिक क्रियायें की थीं। काठियावाड़में चाड़िया गाँवमें वह दिन अिस तरह मनाया गया था :

१. प्रभुसे ऐसी प्रार्थना की गयी कि परमात्मा स्वर्गवासीकी आत्माको शान्ति दे और हिन्दुस्तानको दूसरे देशबंधु मिलें।

२. कुत्तों और गायोंको लड्डू खिलाये गये।

३. उस दिन चढ़स और हल न जोते गये।

४. हर किसानने अगले सालके लिये घरकी जहूरतका अच्छा कपास जमा कर लिया।

और कभी जगह उपवास किया गया और सूत काता गया था। असो नयी चीजें स्वागतके काबिल हैं। जो जो शुभ काम हमें सूझें और मरनेवालेको पसन्द हों, उन्हें ऐसी तिथियोंके बहाने आगे बढ़ाना मरनेवालेके लिये हमारे प्रेमकी अच्छी निशानी है।

चढ़स और हल न जोतनेमें जीव दया है। चौमासेके सिवा हम लगभग लगातार बिना विचारे चढ़स वगैरा चलाते हैं। असलमें ऐसा करनेसे लाभके बजाय हानि ही होती है। जहाँ हर हफ्ते आराम लेनेका और नौकरों व जानवरोंको आराम देनेका रिवाज है, वहाँ लोग कुछ खोते नहीं, पाते ही हैं। अिसलिये बड़े आदमियोंके मरने जैसे मौकोंपर चढ़स वगैरा बन्द रखकर नौकर, जानवर वगैराको आराम देना अच्छी शुरुआत है।

लेकिन कुत्तों और गायोंको लड्डू खिलानेमें झूठी दया है। यह माननेकी कोअी वजह नहीं कि हमें लड्डू अच्छे लगते हैं, अिसलिये गायको

या कुत्तेको भी अच्छे लोंगे या फायदा करेंगे । जानवरोंके स्वाद बिगड़े हुअे नहीं होते । जब मनुष्योंके स्वादमें फर्क है, तो जानवरोंका तो कहना ही क्या ! अंप्रजको लड्डू दें तो वह फेंक देगा । हममेंसे बहुतोंको अुनकी मिठाभी पसन्द न आयेगी । मद्रासमें कोअी रोटी खिलायें, तो मद्रासके लोग अुसे नहीं खा सकते । पंजाबमें चावलका भोज बेकार जायगा । तो फिर गायको और कुत्तेको लड्डू खिलानेका क्या मतलब ? लड्डू खिलानेके ठीक होनेका यह सबूत नहीं कि गाय और कुत्ते लड्डू खा लेते हैं । दुबले ढोरोंको घास देना दया है । मगर गाँवोंमें तो दुबले ढार होने ही न चाहियें ।

कुत्तोंको खानेके लिअे देना दया नहीं; असमें तो मुझे अज्ञान ही दिखाअी देता है । हम नींद बेचकर अुजागरा मोल लेते हैं । कुत्तोंको गलत तरीकेपर ललचाकर हम अुनकी औलाद बढ़ाते हैं और फिर अुन्हें लावारिस रखकर दुबले बनाते हैं । कुत्ते तो सब पाले हुअे ही होने चाहियें । आवारा कुत्तोंकी हस्ती हमारे पापकी या अज्ञानकी निशानी है । अइमदाबाद अपने लावारिस कुत्तोंको अेक जगहसे दूसरी जगह धकेलकर दयाधर्म पालनेका दावा करता है । दयाधर्मका जरा भी विचार करनेसे मालूम पड़ेगा कि नामकी दया करनेमें दोहरी हिंसा होती है । अेक तो कुत्तोंको अपने वातावरणमेंसे निकालनेकी हिंसा और दूसरी अैसे कुत्तोंको पकड़कर गरीब गाँवोंके पास छोड़ देनेसे गाँव वालोंके साथ की जानेवाली हिंसा । आवारा कुत्तोंकी तकलीफका अिलाज समझदार आदमियोंको धार्मिक न्यायकी वृत्तिसे विचार कर ढूँढ़ना चाहिये । अैसे काम तभी हो सकते हैं जब पंचलांग दयाधर्मका बारीकीसे अध्ययन करें । और असा न करेंगे तो वह समय आ रहा है जब धर्महीन हाकिम जल्दबाजीमें कुत्तोंको मरवा देंगे । तुरन्तका अिलाज तो कुत्तोंके जाननवाले शास्त्रीकी देखरेखमें अुनका अलग पींजरापोल खोलना ही मालूम देता है ।

मामूली बात परसे मैं गहरा चला गया हूँ । लेकिन कुत्तोंको लड्डू खिलानेका प्रस्ताव पढ़कर साबरमती आश्रम पर हुअी आवारा कुत्तोंकी चढ़ाअीके अनुभव मेरी आँखोंके सामने आ खड़े हुअे; और अुसपरसे जीवदयाके बारेमें कुछ विचार मैंने पंचाँकी जानकारीके लिअे पेश किये हैं ।

मगर हमारे यहाँ तो जैसे दुबले और आवारा जानवर हैं, वैसे ही दुबले और आवारा इन्सान भी हैं। अन्हें दुबले रखकर जिलानेमें पुण्य मानकर हम पापका ढेर लगा रहे हैं।

पिछले सप्ताह मैं सुरी गया था। मैं गरीबोंका दास माना जाता हूँ। इसलिये सुरीके महाजनोंने मेरे कारण कँगलोंका खिलाया था। अन्होंने खानेका वक्त मेरी गाड़ी पहुँचनेके समय ही रखा था। रास्तेके दोनों तरफ़ खाने बैठे हुअे गरीबोंकी इस कतारके बीचसे मुझे मोटरमें बैठाकर ले जाया गया। मैं शरमाया; गुस्ताखीका डर न होता तो मैं वहीं अुतर पड़ता और भाग जाता। खानेवाले गरीबोंके बीच मोटरमें बिराजनेवाला यह अुनका अुद्धत दास खूब रहा। इस बारेमें मैंने अपने दिलका कुछ रोना सुरीकी सभामें भी रोया।

ऐसा ही अेक दृश्य मैंने कलकत्तेमें अेक पुराने धनी कुटुम्बके यहाँ देखा। वहाँ मुझे देशबन्धुकी यादगारके लिये चंदा अीकट्टा करने ले जाया गया था। इस घरानेका महल 'मार्बल पैलेस'के नामसे पहचाना जाता है। वह बना भी है सिर्फ़ संगमरमरका। मकान शानदार और देखने लायक है। इस महलके आँगनमें सदा गरीबोंके लिये सदाव्रत बैठता रहता है। वहाँ गरीबोंको पकाया हुआ अन्न खिलाया जाता है। दानकी यह अुदारता मुझे दिखानेके निर्दोष अिरादेसे और मुझे आनन्द देनेके अच्छे मक़सदसे मालिकोंने मुझे ठीक अुन लोगोंके खानेके वक्त बुलाया था। मैंने बिना विचारे 'हाँ' कह दिया। मगर वहाँका दृश्य देखकर मैं सुरीसे भी ज्यादा दुखी हुआ और घबराया। खानेवालोंके बीचसे मुझे मोटरमें बैठाकर तो नहीं ले गये, मगर मेरे पीछे जहाँ देखू वहीं लोगोंकी भीड़ तो थी ही। यह सारी भीड़ अिन खानेवाले कँगलोंके बीच होकर निकली। बेचारे खानेवालोंसे अिन लोगोंके पैर तो छूते ही थे। घड़ीभर तो अिन बेचारोंका खाना भी बंद रहा। अुनकी आत्माने मुझे दुआ दी हो तो धन्य है अुनकी समता और अुदारता। कहाँ धूल भरा आँगन और कहाँ बरफ़ जैसा अुजला और अँचा महल। मुझे तो ऐसा लगा कि कहीं यह महल अुन गरीबोंकी हँसी तो नहीं अुड़ा रहा

है ! और मेरे अन्तर को ऐसा जान पड़ा कि अन्त गरीबोंके बीचमें होकर लापरवाहीसे चलनेवाले अन्तके कृपालु भी अन्त हँसीमें शरीक हैं !

क्या अन्त तरह लोगोंका खिलानेमें पुण्य हो सकता है ? शुद्ध भाव होने पर भी मुझे तो अन्तमें विचार और ज्ञानके न होनेसे पाप ही होता दिखा । अन्त सदाव्रत देशमें जगह जगह पर हैं । अन्तसे कंगाली, आलस्य, पाखंड और चोरी वगैरा बढ़ती है; क्योंकि बिना मेहनतके खानेको मिले तो मेहनत न करनेकी आदतवाले लोग आलसी बनते हैं और फिर कंगाल बनते हैं । ‘खाली बैठा नास जाय’ वाली कहावतके अनुसार अन्तसे कंगले चोरी वगैरा सीखते हैं । दूसरी बुराअियाँ वे अपने साथ करें सो अलग । अन्त सदाव्रतोंका अन्त मुझे तो खराब ही दीखता है । धनवानोंको यह सोचना ही चाहिये कि अन्तके दानके पात्र कैसे हैं । यह बात तो है ही नहीं कि हर धर्ममें पुण्य है । लूले-लंगड़े या बीमारीसे दुःखी मनुष्योंके लिये जरूर सदाव्रतकी जरूरत है । अन्तमें खिलानेमें भी विवेक होना चाहिये । हजारोंके देखते हुअे कमजोरोंको भी नहीं खिला सकते । अन्तमें खिलानेके लिये अन्त, शांत और सुघड़ जगह होनी चाहिये । सच तो यह है कि अन्तोंके लिये खास आश्रम होने चाहिये । अन्तसे आश्रम छुटपुट तो हिन्दुस्तानमें हैं । गरीबको खिलानेकी अच्छा रखनेवाले दानी गृहस्थोंको चाहिये कि वे या तो अन्त तरहके अच्छे आश्रमोंमें रुपया भेजें, और जहाँ न हों वहाँ जरूरतके मुताबिक अन्त तरहके आश्रम खोलें ।

कमजोर गरीबोंके लिये कोअी भी धन्धा ढूँढ़ना चाहिये । लाखोंकी भलाअी हो सके, अन्तसा साधन सिर्फ चरखा है ।

धर्मके नाम पर अधर्म

मथुरासे अंक गृहस्थ लिखते हैं :

“मथुराके पास और गोवर्धनके बहुत नजदीक जतिपुरा गाँवमें अगले महीने छप्पनभोगका मेला होगा। वैष्णव मंत्रदायके गुसाहीं लोग भिन्नका बन्दोबस्त करेंगे। सुना है कि अम्दाजन् दो तीन लाख रुपये बिस काममें खर्च होंगे। गुजरातके वैष्णव, जिनमें खासकर बम्बईके व्यापारी भाटिये लोग हैं और जिनके यहाँ धर्मादेकी रकम जमा रहती है उनका वह रुपया बिस मेलेमें लगाया जायगा। अम छप्पनभोगके मौकेपर १०० या बिससे ज्यादा ब्राह्मण श्रीमद्भागवतका एक साथ पारायण करेंगे और तरह तरहके भोग, मिठाबियाँ वगैरा चीजें बनेंगी। रथयात्राका भी यही समय होगा। इजाराँकी तादादमें गुजराती लोग बिस अस्सवमें शरीक होंगे। धर्मके लिये बिस दिखावेकी क्या आप ठीक समझते हैं ?

“यह ब्रजभूमि श्रीकृष्ण महाराजको लीलाओंकी जगह है। श्रीकृष्ण महाराजकी गायमें कितनी भक्ति थी, यह किसीसे छिपा नहीं है। बिसलिजे गायकी भक्ति ही बिस वक्त सच्ची कृष्णपूजा है। गायकी सन्तानका बिस ब्रजभूमिमें आज जितना दर्दनाक दृश्य है, उसे देखकर रोंगटे खड़े हो जाते हैं।

“मथुरा वृन्दावनमें सावन भादोंमें बहुत ज्यादा मेले लगते हैं। लाखों भाभी आते हैं। बाजारमें अच्छा घी दूध देखनेमें नहीं आता। वनस्पति घी और सड़े-भुगे घीके पकवान और मिठाभी सभी जगह बिकती है। और विलायती खॉड भी खूब ही काममें ली जानी है। अब तो लकड़ीका बना हुआ आटा भी काममें लाया जाने लगा है। बिस सामानसे तीर्थकी जगहमें पोषण पाकर ये श्रद्धालु यात्री बिस तरह अपने तीर्थयात्रा सफल करनेमें अपने खुशकिस्मती समझते हैं, और ऐसी भगवद्भक्तिका परिचय देते नहीं लजाते।”

यह हिन्दी समझनेमें सहल है, बिसलिजे मैंने तर्जुमा नहीं किया। उत्तर हिन्दुस्तानमें रहनेवाले शास्त्रको जाननेवाले ब्राह्मण भी गुजरातके श्रद्धालु, मगर अलटे रास्ते चलनेवाले वैष्णवोंके बारेमें क्या खयाल करते हैं, यह अन्होंके शब्दोंमें बतानेकी खातिर मैंने अपरका कागज़ लिखनेवालेकी

भाषामें ही दिया है । मिठाभियाँ खाने खिलानेमें हजारों रुपया खर्च करना और उस कामको धर्मके तौरपर ज़ाहिर करना तो इस जमानेकी बलिहारी ही समझना चाहिये । जहाँ वैष्णवधर्ममें दूसरेके दुःखको देखना मध्यबिन्दु है, वहाँ भावुक माने जानेवाले वैष्णवोंने उसे भोग भोगनेका ज़रिया बना डाला है । जैसे इस देशमें और जगह होता है, वैसे गोवर्धनमें गायकी औलादकी तबाही होती जा रही है । दूध घीकी कमीकी जो बात इस पत्रमें लिखी है, उसका अनुभव सभी यात्रियोंको हुआ है । गुजरातके धनी वैष्णव इस खतपर ध्यान दें, चेतें और धर्मके नामपर होनेवाले अधर्मसे बचें ।

ता० २९-८-'२८

२०

तपका उत्सव

अेक दोस्त लिखते हैं :

“ भगवान् ऋषभदेवजोको बारह महीने तक खानेका मौका नहीं मिला था और वैशाख सुदी तीजके दिन अपने घर जाने हुअे अनेक पोतेने दादाको देखकर खुशीके मोर मिसरीका तैयार रस पिला दिया था । इस कारणसे जैनोंमें बारह महीने तक अेकांतरे खानेका तप करते हैं, और उपवास देरसे शुरू किये हों तो भी वैशाख सुदी तीजका उत्सव करते हैं । इस मौकेको शादीका सा बनाकर न्यौता भेजते हैं, बर्तन और शकर बाँटते हैं, खाना खिलाते हैं, गात गाते हैं और शादीके टीकेकी तरह टीका लगाते हैं । मेरी टोटो रायमें ऐसी रूढ़िका गुलाम बननेसे आत्मा अँची अठनेके बजाय नीचे गिरती है, और कुछ घमण्ड पैदा होता है । इसलिये जब मेरी स्त्रीने बरसी तप शुरू किया, तब मित्रोंके सामने मैंने कह दिया कि रूढ़िको मानकर मैं कुछ नहीं करूँगा, लड़कियोंको भी नहीं बुलाऊँगा । और मेरी शक्तिके अनुसार अच्छे काममें जो कुछ लगाना होगा, गांधीजीके पास भेज दूँगा । मेरी घरवालीने यह विचार पसंद किया, और उसीके मुताबिक इस पत्रके साथ २०१) ०० की हुंडी भेजी है । इसे भील सेवा मण्डलमें, अछूतोंके चंदेमें, गोशालाके काममें

या जहाँ कहीं आपको ठीक लगे वहीं लगा दोजिये । लोक लाजके मारे मुझे भोज देना पड़ता तो ज्यादा खर्च होता । ”

अितनी हिम्मत दिखाने और खराब रुढ़िको ताड़नेके लिये मैं जिस मित्रको वधाभी देता हूँ । जिस मिसालकी नक़ल दूसरे जैनी, वैष्णव वगैरा करें, तो देशमें होनेवाले लोकसेवाके कामोंको मदद मिले और धर्मके नाम पर जो भोग भोगे जात हैं, वे कुछ कम हों ।

हमारा मन भोगोंमें अितना ज्यादा पँसा रहता है कि हम शुद्धसे शुद्ध चीज़को भी भोगका वहाना बना लेते हैं । उपवास वगैराका आध्यात्मिक या रूढ़ानी फल छोड़कर हम अमुके जरिये बड़प्पन कमानेमें लग जात हैं और उसे वादमें कभी तरहके मन्त्रे अड़ानेका साधन बना डालते हैं ।

असलमें तो जा लोग तप वगैरा करते हैं, उनका धर्म है कि उसकी डोंडी न पीटें पिटवायें और अमुके लिये घमण्ड न करें । सगे सम्बन्धी उसे तपका अच्छा उपयोग करना चाहें, तो उसके सिलसिलेमें छिपे तौरपर तटस्थ भावसे उपयोगी दान करें ।

जिस मित्रके खतमें एक दूसरी बातका भी जिक्र है । अनाथालय, बालआश्रम वगैरा संस्थाओं से बक्तपर मिठाभी खानेके लिये दानकी आशा रखती हैं । यह अफसोसनाक रिवाज है । अनार्थोंको आश्रम कायम करके सनाथ बनाना चाहिये । और अन्हें सनाथ बनाना हो तो भीखमें मिला खाना अन्हें कभी न खिलाना चाहिये । अनाथालय चलानेके लिये अच्छा दान लाना एक बात है; उनमें रहनेवाले अनार्थोंको दानी लोग अपनी मरजीका खाना खिलायें, यह दूसरी बात है । एकमें संस्थाको चलानेकी मंशा है, दूसरीसे अनार्थोंका अपमान या बेअिज्जती होती है । फिर, जिस तरह भोजन मंजूर करनेवाली संस्था उसमें रहनेवालोंकी तंदुरुस्तीको जोखममें डालती है और अन्हें चटोरे बनाकर उनकी जिन्दगी बिगाड़ती है । जिसलिये अगर जिस तरहकी संस्थाओं भोजनके बजाय दान ही लेनेका आग्रह रखें और दानी लोग भोजनके रूपमें दान न देनेका आग्रह रखें, तो वे प्रजाकी भलाअीके भागीदार बनेंगे ।

स्मशानका सुधार

भाभी छोटालाल तेजपालने हमें दोचार पत्र लिखे हैं और अन्होंने जो हलचल चला रखी है उसके बारेमें कुछ साहित्य भी भेजा है । यह सब अितना लम्बा है और आसपासकी दूसरी हकीकतोंसे अितना भरा है कि हम उसे छाप नहीं सकते । असलिये हम सिर्फ़ अुनका मतलब ही देनेका विचार रखत हैं, क्योंकि यह मतलब हमें भुपयोगी जान पड़ा है ।

मुर्दोंका बन्दोबस्त करनेकी तकलीफ़ दिन दिन बढ़ती जाती है । गरीबोंकी अड़चन ज्यादा है । कुछ लोगोंका तो मुर्दे अुठाने तककी सहूलियत नहीं मिलती । देशमें महामारी वगैराका बखेड़ा समय समयपर होता रहता है और अुस वक्त लोगोंकी हालत बढ़ी दयाजनक हो जाती है । फिर जब तक मुर्दा जलता रहे तब तक बैठे रहनेमें वक्त फ़जूल बर्बाद होता है । कभी बार चिंता अस तरह बनाअी जाती है कि मुर्दा पूरा ढँकता भी नहीं ।

अिन कारणोंसे कुछ असेंसे मुर्दा ले जाने और जलानेकी क्रियामें सुधार करनेकी कोशिश भाअी छोटालाल कर रहे हैं । हमें लगता है कि यह कोशिश अुत्तेजनके लायक है । अिनका सुझाव अैसा है कि मुर्दोंको सवारीमें ले जायँ । स्मशान अैसे शास्त्रीय तरीकेसे तैयार किया जाय कि मुर्दा अेक भट्टीमें डाला जाय और तेज आगसे अुसकी फ़ौरन् राख हो जाय । अैसा करनेसे रुपया और वक्त बच जाता है और धर्मकी भावनाको जरा भी चोट नहीं पहुँचती । फिर भी फ़िलहाल सवारीमें मुर्दा ले जाने और शास्त्रीय ढंगसे जलानेकी बात तुरन्त लाजमी न करके लोगोंकी मरजीपर छोड़ना ज्यादा ठीक समझा जायगा । अैसे मामलेमें लोकमतको तैयार करनेकी जरूरत है । खराब रिवाज भी धीरे धीरे ही दूर किये जा सकते हैं । लोग समझकर या श्रद्धासे खुशीके साथ जो फेरबदल मंजूर करेंगे, वही सच्चा सुधार माना जायगा । अस तरह जहाँ जहाँ कुछ हिम्मतवाले गृहस्थ हों, रुपयेका सुभीता हो और थोड़े बहुत लोग जलानेके नये तरीकेको

माननेके लिये तैयार हों, सवारी और जलानेकी सहूलियत हो और अन्तिम अच्छा रखा जाय, वहाँ थोड़े समयमें यह जरूरी चीज लोकप्रिय हो जायगी । और महामारीके वक्त गरीब लोग तो इसका स्वागत ही करेंगे ।

ता० ५-१०-१७

२२

महामारी और मौतगाड़ी

काठियावाड़का पिछला (अप्रैल १९२५ का) सफर पूरा करके लौटत वक्त राजकोट बीचमें पड़ता था । स्टेशन पर आये हुअे भाजियोंसे मिलनेपर मालूम हुआ कि महामारीके कारण राजकोट लगभग खाली हो गया है । अमी में इसका फैसला करनेमें नहीं पड़गा कि जिस तरह डरके मारे अपनी जगह छोड़ देना ठीक है या सफाईके नियम पालते हुअे और दूसरे अचित्त अुपाय करते हुअे अपनी जगह पर डटे रहना ठीक है । मगर अितना तो कहा ही जा सकता है कि राजकोट जैसे शहरको महामारीसे बचाना आसान काम होना चाहिये ।

जिस खबरसे मुझे बहुत दुःख हुआ, वह तो यह थी कि महामारीसे मरे हुअे लोगोंकी क्रिया करनेमें भी कुछ लोग डरते हैं, और वह क्रिया सेवासमिति या रियासतको करनी पड़ती है । अिन्सानको मौतका कितना भी डर हो, तो भी वह अपनीकी सेवा करनेके लिये बँधा हुआ ही है; जो मरे अुसकी क्रिया करना अुसका धर्म है । जिस तरह अपना अपना मामूली फ़र्ज भी लोग पूरा न करें, तो समाजके बन्धन टूट फूट कर समाजका नाश ही हो जाय ।

जिस वक्त भाभी छोटालाल तेजपालकी मौतगाड़ी याद आती है । भाभी छोटालाल तो अपनी गाड़ीके पीछे पागल हो गये हैं । जैसे मुझे चरखेमें ही सब कुछ दीखता है, वैसे अुन्हें मौतगाड़ीमें सब कुछ दीखता

है। पर हम अुनकी अतिशयोक्तिका^१ या अुनके पागलपनका खयाल न करें। यही सोचें कि वे जो बात कहते हैं, अुसमें कहाँ तक सचाभी है। अुनकी दलील ऐसी है कि मुर्दोंको कंधे पर रखकर ले जानेमें बड़ी तकलीफ़ होती है, अुसमें बहुत आदमी लगते हैं और बहुत ही शरीर आदमियोंके लिअे तो यह लगभग नामुमकिन ही है। असलिअे वे कहते हैं कि मुर्दोंको गाड़ीमें ले जाना ही ठीक है। असलिअे अुन्होंने राजकोटमें तो अेक गाड़ी भी बनायी है और अुस गाड़ीको आम लोगोंके लिअे मुफ़्त देते हैं। अभी अस सवालको अेक तरफ़ रखें कि हर मौक़े पर मुर्दोंको गाड़ीमें ही ले जायँ या नहीं। लेकिन जब अैसे महामारीके समय आदमियोंकी ख़ूब तंगी होती है और अुठानेवालोंको जोखम भी लेनी पड़ती है, तब गाड़ीको छूटसे काममें लेना समझदारीकी बात होगी। मुर्दा कंधे पर ही ले जानेकी बात कोभी शास्त्रकी नहीं है। यह सिर्फ़ रिवाजकी बात है। जहाँ स्मशान बहुत दूर है, जहाँ गरमी सख़्त पड़ती है और जहाँ अुठानेवाले थोड़े होते हैं, वहाँ गाड़ी तो मददगार होती है। भाभी छोटालालकी बनायी हुअी गाड़ी आदमी खींच सकता है, अुसमें घोड़ा वगैरा रखनेकी ज़रूरत नहीं रहती। यह गाड़ी बगैर थके अेक या दो आदमी ले जा सकते हैं। मौक़े पर गाड़ीका अुपयोग करनेकी मैं सबको सलाह देता हूँ।

ता० १९-४-'२५

पूर्ति*

आश्रममें उपजातियाँ नहीं मानी जातीं । अंक दूसरेके साथ खानेमें छुआछूत नहीं रखी जाती । जिसलिअे आश्रममें सभी अंक पंगतमें खाने बैठते हैं । जिस व्यवहारका प्रचार आश्रमके बाहर नहीं किया जाता । अछूतपन मिटानेके लिअे जिस प्रचारकी ज़रूरत नहीं मानी गयी । अछूतपन मिटानेका अर्थ यह है कि अछूतोंके सार्वजनिक संस्थाओंमें जानेपर जो रुकावटें लगायी जाती हैं, उन्हें दूर किया जाय; और उन्हें छूनेपर जो छुआछूत मानी जाती है, उसे मिटाया जाय । ये पाबन्दियाँ क़ानूनसे भी हटायी जा सकती हैं । रोटीवेटीका व्यवहार अंक अलग सुधार है । जिसमें क़ानून या समाज दखल नहीं दे सकते । जिस खयालसे आश्रमवासी अपने लिअे सबके साथ खाद्य पदार्थ खानेकी स्वतंत्रता रखते हैं, मगर ऐसा करनेका प्रचार नहीं करते ।

आश्रमकी तरफसे अछूतोंके लिअे पाठशालाओं खोलने और कुँअे खुदवानेकी कोशिश भी हो रही है । जिसमें आश्रमका खास काम रुपया जमा करना है । अछूतपनके वारेमें आश्रमकी सही प्रवृत्ति तो आश्रमवासीके अपने आचरणको सुधारनेकी है । आश्रममें भूचनीचपनको कोअी भी स्थान नहीं है ।

जितने पर भी आश्रम वर्णाश्रमको हिन्दू धर्मका अंग मानता है । मगर वर्णाश्रमका सच्चा अर्थ मामूली अर्थसे अलग तरहका है । चार वर्ण और चार आश्रम सिर्फ हिन्दू धर्मकी ही व्यवस्था हो, सो बात नहीं । यह चीज़ मनुष्यमात्रमें है । यह सार्वजनिक नियम है । इसका भंग करनेसे दुनियामें कअी आपत्तियाँ पैदा हुअी हैं । जैसे वर्ण चार हैं, वैसे ही आश्रम भी चार हैं — ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास । ब्रह्मचर्य आश्रमका अर्थ है, विद्याभ्यास काल । जिस समयमें विद्यार्थी — स्त्री या पुरुष — ब्रह्मचर्यका पालन करे, अतना ही काफ़ी नहीं, बल्कि जिस कालमें इस पर विद्यासंपादनके सिवा दूसरा कोअी भार न होना चाहिये । यह अवस्था

* 'सत्याग्रह आश्रमके इतिहास' में वर्णाश्रम-धर्म, वर्ण-व्यवस्था और जातपाँतके बारेमें प्रकट किये गये गांधीजीके विचार ।

कमसे कम २५ साल तककी मानी गयी है । उसके बाद ब्रह्मचारीको गृहस्थ जीवनमें प्रवेश करना हो, तो करे । ९९-७५ फ्री सैकड़ा लोग तो उसमें प्रवेश करेंगे ही । मगर यह जीवन ५० वर्षकी अवधिमें बन्द होना ही चाहिये । इस कालमें गृहस्थ अपनी विषयतृप्ति करे, धन कमाये, धन्य करे, सन्तान पैदा करे । बाबूकी २५ साल पतिपत्नी अलग रहकर सिर्फ भलाअच्छे काम करें, जनताकी सेवा करें, और परिवारसे दूर रहकर सारे संसारको परिवार माननेकी कोशिश करें । आखिरी २५ बरस दोनों संन्यासमें बितायें । इसमें खास व्यवसायके बजाय दोनों अलग अलग रहकर लोगोंमें धार्मिक जीवनका प्रचार करें, आदर्श जीवन बिताकर लोगोंको आदर्श सिखावें, और खुद सिर्फ प्रजाकी दयापर गुजर करें । यह साफ मालूम होता है कि इस तरहसे बहुत लोग चले, तो समाजकी जिन्दगी बहुत ऊँचे दर्जेकी हो जाय ।

मगर इस बारेमें अलग अलग राय हो सकती है कि आश्रमकी जो मर्यादा ऊपर बतायी गयी है, वही आज भी होनी चाहिये या दूसरी । मुझे मालूम नहीं कि आश्रम-व्यवस्थाकी खोज हिन्दू धर्मके बाहर भी हुयी है । आज तो यह कहा जा सकता है कि हिन्दू धर्ममें वह लगभग नष्ट हो गयी है । ब्रह्मचर्याश्रम-जैसी चीज तो कोअी है ही नहीं । और यह तो आश्रम-जीवनका आधार है । दूसरे आश्रमोंमें संन्यास आश्रम नामके लिये जरूर पाया जाता है । परन्तु संन्यासियोंमें बहुतसे तो सिर्फ वेशधारी रह गये हैं, बहुतसे ज्ञानहीन हैं, और कुछ, जिन्होंने विद्या अच्छी प्राप्त की है, ब्रह्मज्ञानी तो नहीं, लेकिन धर्मान्ध हैं । उनमें कहीं कहीं कोअी चरित्रवान संन्यासी भी जरूर देखनेमें आते हैं । मगर संन्यासीके तेजवाले मुश्किलसे नजर आते हैं । सम्भव है, ऐसे लोग छिपे हुअे रहते हों । मगर यह साफ जाहिर है कि संन्यास आश्रमका भी लोप हो रहा है । जिस समाजमें प्रौढ़ संन्यासी विचरते हों, उस समाजमें धर्म और अर्थकी कंगाली नहीं हांती, वह पराधीन नहीं होता । आजका हिन्दू समाज धर्महीन, तेजहीन, अर्थहीन और पराधीन है । इस बारेमें दूसरी राय मैंने नहीं सुनी । मेरी राय तो यहाँ तक है कि संन्यास आश्रम अगर जिन्दा होता, तो पासवाले दूसरे धर्मोंपर भी अिन

संन्यासियोंका असर पड़े बिना न रहता । संन्यासी हिन्दू धर्मका ही नहीं, सभी धर्मोंका है ।

मगर उसे संन्यासी ब्रह्मचर्य आश्रमके बिना पैदा ही नहीं हो सकते । वानप्रस्थ तो नामको भी नहीं रहा । बाकी रहा गृहस्थ आश्रम । सो गृहस्थ जीवन आश्रमके रूपमें नहीं रहा । वह तो सिर्फ मनमानी करनेका साधन बना हुआ है । उसमें मर्यादा नहीं रही । दूसरे आश्रमकी ढालके बिना गृहस्थ जीवन पशुजीवन है । जिस जीवनकी मर्यादा मनुष्य और पशुके बीचका अंक बड़ा फर्क है । वह न रहा तो मेरी रायमें यह कड़नेमें अतिशयोक्ति नहीं हागी कि गृहस्थ जीवनमें पशुजीवनके सिवा और कुछ नहीं रहेगा ।

जिस आश्रम जीवनका फिरसे अद्वार करनेकी बड़ी भारी कोशिश आश्रममें जारी है । मुझे खुद यह प्रयत्न ऐसा ही हास्यजनक लगता है, जैसे चींटा गुड़में भरे घड़ेको अुठानेकी कांशिश करे । मगर कितना ही हास्यजनक लगे, तो भी यह अेक सत्यानृष्टसे प्रेरित प्रयत्न है । और जिसीलियं आश्रममें सभीको ब्रह्मचर्यका पालन करना पड़ता है । आश्रमवासियोंको उसे मरते दम तक पालना है । जिस दृष्टिसे आश्रममें रहनेवाये सभीको आश्रमवासी नहीं माना जाता । जिसने अुध्रभर ब्रह्मचर्यका पालन करनेका व्रत लिया है, वही आश्रमवासी माना जाता है । उसे थोड़े ही हैं । बाक़ी सब आश्रम-विद्यार्थी माने जायेंगे । अगर यह प्रयत्न सफल हो, तो शायद अुसमेंसे आश्रम-व्यवस्था पैदा हो जाय । मेरा खयाल है कि जिस प्रयत्नकी सफलताका अन्दाज़ा लगानेके लियं आश्रमकी सोलह सालकी त्रिन्दगी काफी नहीं है । में नहीं जानता कि यह अन्दाज़ा कब लगाया जा सकेगा । सिर्फ अितना ही कह सकता हूँ कि सोलह वर्षकी कोशिशके बाद मुझे निराशा ज़रा भी नहीं है ।

जब आश्रम-व्यवस्था जिस तरह बिगड़ गयी है, तब वर्ण-व्यवस्थाकी हालत जिससे कुछ कम खराब नहीं है । मूलमें चार वर्ण थे । अब अनगिनत हैं अथवा अेक ही । यदि जातियोंके बराबर वर्ण मानें, तो जातियाँ अपार हैं । और यदि यह मानें कि जातियोंका वर्णसे कोअी सम्बन्ध ही नहीं है (मेरी रायसे यही मानना भी चाहिये), तो अेक ही वर्ण रहा है, और वह है शूद्र । यहाँ शूद्रका अर्थ दाससूचक नहीं है,

लेकिन वस्तुस्थिति सूचक है । जो वर्ग नौकरी करता है, वह पराधीन है या शूद्र है । आज तो सारा हिन्दुस्तान पराधीन है, जिसलिअे वह शूद्र है । किसान अपनी जमीनका मालिक नहीं, व्यापारी अपने व्यापारका मालिक नहीं । शास्त्रोंमें ब्राह्मण और क्षत्रियोंके जो गुण बतलाये गये हैं, वैसे गुणवाले ब्राह्मण और क्षत्रिय भाग्यसे ही देखनेको मिलते हैं ।

जब वर्ण-व्यवस्थाकी खोज हुअी थी, तब मेरे खयालमें अँचनीचकी भावना नहीं थी । जिस संसारमें न कोअी अँचा है, न नीचा । जिसलिअे जो अपनेको अँचा मानता है, वह कभी अँचा नहीं हो सकता । जो अपनेको नीच मानता है, वह सिर्फ अज्ञानके कारणसे । उसे उसके नीच होनेका पाठ उससे अँचापन भोगनेवालोंने सिखाया है । ब्राह्मणमें ज्ञान हो, तो ज्ञानहीन लोग उसका आदर करेंगे ही । जो ब्राह्मण आदरसे अभिमानी बनेगा या अपनेको अँचा मानेगा, वह उसी वक्रतसे ब्राह्मण नहीं रहेगा । गुणकी पूजा सदा ही होगी । मगर गुणवान आदमीने अपनेको जहाँ जिस कारणसे अँचा माना कि तुरन्त उसके गुण निकम्मे हो जाते हैं । जिसमें कुछ भी गुण या शक्ति है, वह आदमी उस गुण या शक्तिका रक्षक है और उसे उसका उपयोग समाजके लिअे करना चाहिये । किसी भी व्यक्तिको अपने ही लिअे जीनेका हक नहीं । कोअी अपनी शक्ति अपने ही लिअे अिस्तेमाल नहीं कर सकता । सब अपनी शक्तिका उपयोग समाजके लिअे पूरी तरह कर सकते हैं ।

जिस कल्पनासे पहले वर्ण-व्यवस्था हुअी हो या न हुअी हो, आज तो कोअी भी अपनेको अँचा कहलाकर जीवन निर्वाह नहीं कर सकता । उसका यह दावा समाज अपनी अिच्छासे नहीं मानेगा । यह हो सकता है कि वह जबरदस्तीसे सिर झुका ले । दुनियामें जो जाग्रति हुअी है, उसमें स्वेच्छाचार भले ही बहुत आ गया हो, मगर लोकमत अँचनीचका भेद सहनेको आज तैयार नहीं । दिनदिन जिस भेदका अिन्कार बढ़ता जा रहा है । यह ज्ञान फैलता जाता है कि आत्माके रूपमें सभी बराबर हैं । यह भाव भी अँचनीचका भाव मिटाता है कि हम सब अेक ही अीश्वरके बनाये हुअे हैं । जिसका यह मतलब नहीं कि चूँकि यह भेद नहीं है या न होना चाहिये, जिसलिअे सबकी शक्ति भी आज बराबर

है या होनी चाहिये । अेक दूसरेकी शक्ति अेक-सी नहीं, सबकी जायदाद बराबर नहीं, सबको समान अवसर नहीं । फिर भी सब बराबर हैं, इसीका नाम तो भ्रातृभाव है । भाजीबहन अलग प्रकृतिके, अलग शक्तिवाले, और अलग अुप्रके होते हुअे भी सब समान हैं । यही बात जीवमात्रके बारेमें है ।

अिस तरह अगर वर्ण-व्यवस्था परमार्थके लिये हो, धार्मिक हो, तो अुसमें अूँचनीचपनकी गुंजायश ही नहीं रहती ।

अिस तरहके अेक दूसरेको समान समझनेवाले चार विभाग वर्ण-व्यवस्थामें हैं, और वे जन्मसे हैं । कर्मसे वे बदल भले ही जायँ, पर वर्ण-व्यवस्थाका आधार जन्म न हो, तो अैसा ही लगता है कि फिर अुसका कोअी अर्थ नहीं रह जाता है ।

वर्ण-व्यवस्थामें धर्म और अर्थका संग्रह है । अुसमें पिछले जन्मका और माँबापका असर मान लिया गया है । सभी अेक-सी शक्ति और अेक-सा रवैया लेकर नहीं पैदा होते । यह भी नहीं हो सकता कि बेशुमार बच्चेकी शक्तिका माँबाप या हुकूमत अन्दाजा लगा सकें । लेकिन अगर यह खयाल रखकर बच्चेको अपने धन्धेके लिये तैयार किया जाय कि बच्चेमें अुसके माँबापका, आसपासके वायुमण्डलका, और पिछले संस्कारोंका असर होगा ही, तो किसी किस्मकी परेशानी न हो । निरर्थक प्रयोगोंमें लगनेवाला वक्त बच जाय, नीतिनाशक होइ न हो, समाजमें सन्तोष रहे और आजीविकाके लिये कशमकश न हो ।

अिस व्यवस्थाके गर्भमें ही अूँचनीचपनका भेद अुठ जाता है । अगर मोचीसे बड़अी बड़ा और बड़अीसे वकील-डॉक्टर और भी बड़े माने जायँ, तो अपनी मरजीसे कोअी मोची या बड़अी न रहे, बल्कि सब वकील-डॉक्टर बननेकी ही कोशिश करें । और अैसा करनेका अुन्हें अधिकार होना चाहिये और तारीफ़की बात समझी जानी चाहिये । यानी वर्ण-व्यवस्थाको बुराअी मानकर अुसके नाशकी अिच्छा और कोशिश करनी ठीक है ।

यह कहनेमें कि सब अपने अपने पैतृक धन्धेकी शिक्षा ग्रहण करें, यह खयाल भी आ जाता है या आना चाहिये कि सब धन्धोंका मूल्य

गुजरके लायक ही होना चाहिये । अगर मोचीसे बढ़ाईकी मजदूरी ज्यादा हो और दोनोंसे वकील-डॉक्टरकी बहुत ही अधिक हो, तो फिर सभी वकील-डॉक्टर बननेकी कोशिश करेंगे । आज ऐसा होता है । उससे द्वेष बढ़ा है और वकील-डॉक्टरोंकी तादाद जितनी चाहिये उससे ज्यादा हो गयी है । जैसे बढ़ाई और मोची वगैराकी जरूरत है, वैसे समाजको वकील और डॉक्टरकी जरूरत भी हो सकती है । यहाँ ये चार धन्धे अदाहरणके लिये और अंक-दूमरेके साथ मुकाबला करनेके लिये दिये गये हैं । यहाँ यह विचार करनेकी जगह नहीं है कि कौनसे धन्धोंकी समाजको ज्यादा जरूरत है या बिल्कुल जरूरत नहीं है ।

लेकिन वर्ण-व्यवस्थाको माननेके साथ ही यह भी मान लेना चाहिये कि विद्वत्ता कोभी धन्धा नहीं है और रुपया जमा करनेके लिये उसका उपयोग नहीं होना चाहिये । इसलिये वकील-डॉक्टरके कामको जिस हद तक पेशा माना जाय, उस हद तक उससे गुज़ारे लायक ही लेना चाहिये । पहले ऐसा ही था । देहाती वैद्य बढ़ाईसे ज्यादा नहीं कमाते थे । उन्हें भी रोजी मिलती थी । मतलब यह कि सब धन्धोंकी कीमत बराबर और गुज़र लायक होनी चाहिये । वर्णकी विशेषता उसकी संख्याका निश्चय करनेमें नहीं है; उसकी विशेषता मनुष्यके कर्तव्यका निश्चय करनेमें है । वर्णकी संख्या भले अके हो या अनेक, शास्त्रकारने तो चार वर्ण जरूरी मानकर बताये हैं । सबको बराबरीका दर्जा देनेके बाद उन्हें चार मानें या उनकी संख्या बिल्कुल बढ़ा दें, इससे बहुत फ़र्क नहीं पड़ता ।

अस अर्थको सामने रखकर वर्णका पुनरुद्धार करनेकी कोशिश आश्रम करता है । भले वह समुद्रकी लहरोंको रोकने-जैसी हो । उसकी जड़में दो बातें मैंने बतायी हैं : अचनीचका भाव मिटाना और सबको रोजीका अधिकार देकर सबकी रोजी अंक सरीखी रखना । यह मकसद पूरा करनेमें जितनी सफलता मिलेगी, उतना ही समाजको लाभ होगा ।

कोभी कहेगा कि मैं यह हानि कैसे भूँज जाता हूँ कि अस व्यवस्थासे विद्या प्राप्त करनेकी ~~अुन~~ कम हो जायगी । विद्याकी अुमंग आज जिस कारणसे होती है, वह उसे कलंकित करती है, और उस

हृद तक वह कम हो जाय तो उसमें भला ही है । विद्या मुक्तिके लिये यानी सेवाके लिये है । जिसमें सेवाकी लगन होगी, वह विद्या प्राप्त करनेकी कोशिश करेगा ही । उसकी विद्या उसे और समाजको सुशोभित करेगी । और जब उसमेंसे रुपया पैदा करनेका लालच दूर हो जायगा, तब विद्याभ्यासका कम बदल जायगा और उसे लेने और देनेका तरीका भी बदल जायगा । अमुका आज खूब दुरुपयोग होता है । जिस नये दृष्टिकोणका आदर हों, तो विद्याका कमसे कम दुरुपयोग हो ।

होड़की गुंजायश फिर भी रहेगी । वह होड़ अच्छा बननेकी, सेवावृत्ति बढ़ानेकी होगी । और सबको गुजरके लायक मिलता रहेगा, तां अमन्तोष और अन्धाधुन्धी मिट जायगी ।

जिस विचारधेणीके अनुसार वर्णका जो गलत अर्थ आज होता है, वह नहीं होना चाहिये । छुआछूत मिटनी चाहिये और रोटीबेटी व्यवहारके साथ वर्णका जा निकट सम्बन्ध आज है, वह दूर करना चाहिये । किसके साथ खाया जाय और कौन किसके यहाँ शादी करे, जिसका वर्णके साथ कांभी ताल्लुक नहीं । मनुष्यको जहाँ खाना होगा, जहाँ उसे पसन्द होगा, जहाँ उसे प्रेमसे निमंत्रण मिलेगा, वहाँ वह खायेगा । स्त्री-पुरुषको जहाँ अपना श्रेय दिखेगा, वहाँ वे शादी करेंगे । आम तौरपर विवाह एक ही वर्णमें होना सम्भव है । मगर दूसरे वर्णमें हो, तो पाप नहीं माना जा सकता । पापका निर्णय दूसरी ही तरह होगा । मनुष्यका बहिष्कार वर्णसे नहीं होगा, समाजसे होगा । समाजका विधान आजसे ज्यादा अच्छा होगा । उसमें जो गन्दगी, पाखण्ड वगैरा घर कर चुके हैं, वे निकल जायेंगे ।

परिशिष्ट

१

हिन्दू समाजकी प्रतिज्ञा

[पं० मालवीयजीकी अध्यक्षतामें बम्बयीमें ता० २५-९-'३२ को हुई हिन्दू परिषदका प्रस्ताव, ५१ वें पन्ने पर आये हुअे सम्बन्धको ध्यानमें रखकर, नीचे दिया जाता है ।
— प्रकाशक]

“ यह परिषद प्रस्ताव करती है कि आजसे हिन्दू समाजमें किसीको भी जन्मके कारण अछूत नहीं माना जायगा, और जिन्हें आज तक अछूत गिना जाता है, उन्हें आम कुओं, आम पाटशालाओं, आम रास्तों और दूसरी सभी सार्वजनिक संस्थाओंका अस्तिमाल करनेका दूसरे हिन्दुओंके बराबर ही हक होगा । इस हकके लिये मौका मिलते ही कानूनकी मंजूरी ली जायगी । अगर स्वराज्य मिलने तक वह मंजूरी न मिली होगी, तो स्वराज्यकी पालियामेण्टके सबसे पहले कानूनोंमें यह अंक होगा । ”

“ साथ ही यह भी निश्चय किया जाता है कि आज कल अछूत माने जानेवाले वर्गों या तबकोंपर जो सामाजिक पाबंदियां रूढ़िके कारण लगी हुअी हैं, वे सब और मन्दिरोंमें जानेकी मनाअी भी तमाम वाजिब और शान्तिमय अुपायोंसे दूर कराना तमाम हिन्दू नेताओंका धर्म होगा । ”

२

आश्रमका रहन सहन

[६० वें पन्नेपर गांधीजीने सत्याग्रह आश्रमके रहन सहनका जिक्र किया है । उस रहन सहनकी जड़में कौनसा अुसूल है, यह आश्रमकी नियमावलीमेंसे लिये हुअे नीचे लिखे व्रतसे समझमें आ जायगा ।
— प्रकाशक]

अछूतपन मिटाना

“ हिन्दूधर्ममें अछूतपनकी रूढ़िने जड़ पकड़ ली है । अुसमें धर्म नहीं बल्कि अधर्म है, अैसा विश्वास होनेके कारण अछूतपन मिटानेको

आश्रमके नियमोंमें जगह दी गयी है । अछूत माने जानेवालोंके लिये दूसरी जातियोंके बराबर ही आश्रममें स्थान है ।

“ आश्रम जातपाँतका फर्क नहीं मानता । ऐसा विश्वास है कि जातपाँतसे हिन्दू धर्मका नुकसान हुआ है । उसमें जो झूचनीच और छूतछातकी भावना है, वह अहिंसाधर्मके लिये जहर है । आश्रम वर्णाश्रम धर्मको मानता है । ऐसा मालूम पड़ता है कि उसमेंकी वर्ण-व्यवस्थाका सिर्फ धंधे पर दारमदार है । जिसलिये वर्णकी नीति पर चलनेवाला आदमी माँबापके धंधेसे रोज़ी कमा कर बाक़ीका वक़्त शुद्ध ज्ञान पानेमें और बढ़ानेमें लगाये । स्मृतियोंमें जो आश्रम व्यवस्था है, वह दुनियाका भला करनेवाली है । मगर वर्ण और आश्रमका धर्म मानते हुये भी आश्रमका जीवन गीताके माने हुये व्यापक और भावना प्रधान संन्यासका आदर्श सामने रखकर बनाया हुआ है, और जिसलिये उसमें वर्णके भेदकी गुंजायश नहीं । ”

सूची

अकबर ३५

अकूत ६४, ९८, १०८-९, ११६

—और हिन्दूधर्म ४७, ६७

—का धर्म २८-९

—का वर्ण ४२-३, ५०-१

—के घुरे रिवाज ११६

—में औच-नीचका भेद १२-३

—सेवक हैं १४

अकूतपन (देखिये अकूत) १५, २०, २७,

२९, ४८, ५२, ५६, ६५, १०५-८

‘अण्डु घिस लास्ट’ ८१

अध्यत्मज्ञान १०

अन्तर जाति विवाह ४८

अनायास्य १२९

अपरिग्रह ८१

अमृतसर २८

अमेरिका १६, १२१

अयोध्या ३४

अर्जुन ७३

अलग अलग जातियाँ और शादी विवाहका

सम्बन्ध ४४

अल्पमतवाली कौमं ४४

अलाहाबाद युनिवर्सिटी ४५

अनद्वययोग ९९, १०१-३,

अस्तित्व ८१

अहमदाबाद १२४

अंग्रेज ७५, १२४

अंत्यज (देखिये अकूत)

अहिंसा ६२

आखा भगत ४८

आचार विचारकी अकता ९८

आजीविकाका मार्ग १९-२३, ४३, ५३, ६२-३, ७५-६, ७९ (देखिये बापदादाका पेशा)

आदिकर्णाटक ७८

आर्य विद्या ७८

आर्य संस्कृति ७८

आश्रम (सत्याग्रह) ७-८, ८१, १२४

आश्रम व्यवस्था ३१, ३८, ३९

अटली ३१

अमिन् ७३

अस्लाम ३३

अग्लैंड १६

ओगुस्विस्त २८

ओसाओ २, ११९

ओपजातियाँ ९२, ९६, १०६

औच-नीचका भेद ४, १२, १४, १७, ४८-९, ६३-४, ६८, ८२, १२२, १३१

औचापन (मन्त्रा और कंदरती) १३, ३६

कृष्णभदेव १२८

अक हो वर्ण ५३, ६७

कच्छ १३

कडलोरका भाषण १५-६, ३३

कताओरुपो यज्ञ ९

कन्याकुमारी ९४

कन्या विक्रय ९९, १०२, १०८

कर्ज ११६

कलकत्ता १०४, १२५

कांग्रेस ११५

काठियावाड़ ९, ७२-४

कारज ११८ (देखिये मृत्युभोज)

कारवार ३२

कालेलकर, काका ७९, १२०, १२२

कुत्तेका सवाल १२३-४

कुरल २६

केषोलिक धर्म २१
 केन्द्रोय असेम्बली ६५
 कोसंबो, धर्मानन्द ७९
 कौमके बीच सामाजिक मेलजोल ४४-६
 कौमी सवाल ४, ४४-६, ७२
 कौमी भेकता ४७
 क्षत्रिय कौन ? ९, १४, ७२-४
 क्षत्रिय धर्म ९-१०, ७२-४
 खंभात १०९
 खादी ७७-८, ८०
 खानपान — गर्भके समयका १०९, ११५
 —मौतका १०९
 —शारीके समयका १०९-१०
 खेती और किसान ८२
 गांधीजी और हिन्दू धर्म १५, ३०, ५०
 (की कल्पना) ४९, ५०
 —का जाति बहिष्कार ९८
 —का वर्ण ७-८, १३, १६, ७५-६, ८०
 —का वर्ण धर्मका अर्थ १४, ४०-३
 —का वर्णाश्रम धर्म १५-६
 —का सर्वधर्म समभाव ५०
 —का स्वजातिके साथ संबन्ध ९६-९
 —का सुधारका तरीका २८-९
 —की अद्वैतमें मान्यता १६
 —की आस्तिकता ६२
 —की चरखेमें श्रद्धा १३१
 —की प्रवृत्तिकी यथार्थता ७७
 —की ब्राह्मण-वर्णके प्रति श्रद्धा २६, ६३, ६५-६
 —की भोजनके प्रति मान्यता १०९, ११३
 —की महत्वाकांक्षा ६७
 —की शास्त्रार्थ पद्धति ३७-८
 —के लेखके पाठकोंसे ५७, ६०
 —पर बणसंकर करनेका आक्षेप और
 झुसका झुतर ७-११

—गरीबोंके दास १२५-६
 —हिन्दू क्यों ? ३०
 गृहस्थाश्रम २२
 गिबन ३१
 गोता ५८ (देखिये भगवद्गोता)
 ग्रीस ३१
 गुजरात ८६, १०६, १२७-८
 गुरुत्वाकर्षण १९, ४६
 गुलाबबाओ ८७
 गुलामी ३, १८, ४७, ७६
 गोरक्षा ७५, ७७
 गोलमेज परिषद ४४
 चरखा ७-९, ७३, ७८, ८३-५, १२६, १३१
 —का संदेश ८
 —में सर्वस्व १३१
 चार आश्रम — वे मिमाल भेद ३१
 चीनुभाओ — सर ११७
 चैतन्य ३१
 चौथे वर्ण पर सख्तो ३६
 छात्रालय (राष्ट्रीय) १२०-२२
 छुआकृत — और वर्णाश्रम धर्म २७ — और
 रोटो बेटो व्यवहारकी पाबन्दियाँ ४८
 कृत अकृत ३३ (देखिये अकृत)
 छोटाखाल १३१-२
 जम्बूसर ११५
 जातिपैत ३-४, ४१
 —के बन्धन और ऊँच-नीचका भेद
 ४४-५
 जातियाँ और उपजातियों ३
 जातीय धर्म ७
 जातिभेद २५
 —और ऊँचापन ४५, ९३, ९७-८
 —और भोज ९४, १०२, ११७-८

-और भोज और सत्याग्रह ११०-१२
 -और धर्मका भेद ४४
 -और राष्ट्रभावना ३-४, ९२
 -और वर्ण ४, २०-२२, ३५-६
 -का अर्थ ९१
 जाति व्यवस्था-और धर्म रक्षा ९२-३, ९५-७
 -और नीति धर्म ९३-४, १०४-५, १०८
 -का दोष ४, ४५, ९१-४
 -का लाभ और हक १०१
 -का सुधार (देखिये जाति सुधार)
 -का हथियार (देखिये बहिष्कार)
 -की आजको हालत ९१-३, ९९, ११७
 -को श्रुति ३५-६, ४१, ४५ (हिन्दू शास्त्रके विरुद्ध) ९१, ९७, १०४-५
 -की तीन सजायें ९५
 -की संकुचितता ९२-४, ९८, १०३, १०५-७
 जाति सुधार ९२, ९५-९, १०४-८, ११०-११, ११७-९
 जावरा ८७
 ज्ञान और तप ५०
 जीवदया १२४
 जीवन व्यवस्था १४, ४०-१, ७१
 जैन १०९
 द्रुष्टी ८३
 टॉलटॉय ८१-२
 तप और धर्म ५०
 तलवारका जमाना ७२-३
 तंजौरका भाषण १५-६, ३३-५
 तामिलनाडु २२, ३७, ४१
 तिरुपुरकी सभा १७
 तेरही (देखिये मृत्युभोज)
 दक्षिण अफ्रीका १६
 हया-धर्म १२-६

दान ८५, १२५-६, १२९
 -करनेका रिवाज ११८, १२५-६, १२८-९
 दीक्षाका अर्थ ८७-८
 देशबन्धु १२३, १२५
 धन्या २०-२४, ३६, ३८-९, ४३, ४६, ५५, ७०-१, ७९-८०, ८३, १२६
 धन्धे और वंशपरंपरा ३६
 धर्म ४०, ४९-५०, ५२, ७८, १०५, १०७
 -की रक्षा 'सत्याग्रह' ९५, ११२
 -के मूल सिद्धान्त ६२, ११३-४
 -शास्त्रमें प्रमाण ११३-४
 -के बाहर शादो ४६
 -परिवर्तनका पागलपन २०, ३१, ११६
 धुलिया ७५
 नयी स्मृतियां २६, ९३
 न्यूटन १९
 नाइकर्णी-डॉ. ३२, ३७-९
 नोच धन्धे और समाज ८०
 नेलोर ४२
 परशुराम ७७
 परिचर्याका अर्थ ५८
 परिस्थिति ३६
 पश्चिम १८
 -की निगाहमें अछूत ४७
 -की राक्षसी सभ्यताकी नकल ७६
 -के पशुबलकी नकल ७२
 -के लोग-दुनियावी चीजें ३०
 पंक्ति-भेद १२०-२२
 -मांसाहारके साथ ४५, ४७
 पंजाब १२४
 प्रजासत्ता ७३
 पाण्डव ७३
 पारसी ७३

पैंचवौं वर्ष १४, ७२

पालिताणा ७९

पिंजरापोल १२४

पीढ़ी दर पीढ़ी ३३

—का भुसुल ४, १९, २४, ३१, ३५, ३६

पूँजीवाद ६३

फाल्गु अंग २०. ४५, ४८

बहिष्कार (जातवाहर) १०२-३, १०६-९, ११५

बंगाल १०६ १२३

बन्धुकी ५१, ७३, ९१, १२७

—की प्रतिष्ठा ५१-२

बाभिविल ८२

बाजीराव ३५

बाबिलोन ३१

बापदार्दाका पेशा (धन्धा) ११, १९, २१

बारडोली ८६

बालकोवा ८-९

बुद्ध २७-८, ८७

बुरे रिवाज ९९, १०४, ११३-२०

—में खर्चका सदुपयोग ११२, ११५-६, ११९, १२४, १२६

बुनीहि ८२

बेपारोका फर्मे ७५

बैदका पेशा २१-२, ७६

बौद्ध धर्म १२, २७-८, ३०

—और ब्राह्मण २७

ब्रह्मचर्य ३१

ब्रह्मचर्याश्रम ३१-२

ब्रह्मज्ञान ५८

ब्राह्मण कौन ? १४-६, १८, ६५

ब्राह्मणः धर्म १२, २८-९, ३७, ५०, ६, ६४-९, १२२

ब्राह्मण अब्राह्मण ३, १७, ३२-३,

—और वर्णाश्रम धर्म ३२

—के झगड़े १५, ३५

—के सवाल १९, ३६

ब्राह्मण और नौकरो ६९, ७१

ब्राह्मणपनका मतलब ६५-६

—को अवनति ६६

—आध्यात्मिक ठेकदारी ३४

ब्राह्मण वर्ण (वर्णोंकी आखिरी हद) २६

‘ब्रेड लेबर’ ८१

भगवद्गीता २५-६, ८२

—का वैश्य ७६

भंगी १३, ८३

—का धंधा १३

—समाजकी तन्दुरुस्तीके लिये १३

भगवत १२८

भील सेवा मण्डल १२९

भीष्म १०१

भजद्वी तालोम २९

भजूरवर्ग ७१, ८१

भजूरवाद ६३

भणिलाल छत्रपति ११५

भथुरा १२७

भद्रास ४, १२४

भनुष्य यानी ? ६४

भनुष्य धर्म १३१

भनुष्यका स्वभाव ६९-७०

भनुस्मृति २५, ३५, ११३

—अलग अलग वर्णोंमें शादी ब्याह,

खानपान ३५

महादेवभाभी १५, ७५, ७७

महामारी १३१-२

मृत्युभोज और धर्मशास्त्र ११३-४

मानपत्रका अर्थ ९६-७

मालवीयजी — महाराज ५१

मांसाहार ४५, ४७

मुसलमान ४, ४५-७, ७२, ११९
 मेरा वर्णधर्म-और अद्वैतपन ५२
 -सब जगह फैला हुआ है ५०, ६२
 मैक्समूलर १७, ३१, ३९
 मैसूर ७७-८
 मोढ़ जाति ९६-७
 मोरबी १६
 मौत और रोना पीटना ११९
 मौत गाढ़ी ९५, १३१-२
 मौतर (मृत्यु भोज) ११८
 यज्ञ-का अर्थ ५८, ८२
 (कताभी रूपी) ९
 यद्गदी ४, ११९
 रमेशचन्द्र दत्त ८२
 रसोभिया-ब्राह्मण १२०-२१
 -अब्राह्मण १२१
 रस्किन ८१
 रहन सहनका माप १८
 राजकोट १३१
 राजपूत परिषद-(वरतेज) ७, ७२-५
 राम ३४, ३७, ७३, ७७
 -ऐतिहासिक ३७-८
 -गांधीजीके काल्पनिक ३८
 रामकृष्ण ३१
 रामराज ९७
 रामानुज ३१
 रामायण ३८
 -में क्षेपक ३४
 राष्ट्रपति ८०
 राष्ट्रभावना ४-५
 रिवाज-(देखिये बुरे रिवाज)
 रुढ़ि २६, २९, ४८, १०८, १११-२,
 ११७, १२८-९, १३२
 रुढ़िबल ११७ (देखिये रुढ़ि)
 रूस ६१

रोटीबेटी व्यवहार ५-६, १३, २५, ४६,
 ९१, ९३-४, १०२, ११९
 -और हिन्दू धर्म ५९
 -की मनाही और वर्ण धर्म ६१
 -कौमी अकतासे कोभी ताल्लुक नहीं ४७
 -राष्ट्रीयताके लिये जरूरी नहीं ५
 रोटी मजदूरी ('ब्रेड क्रब') ८२
 रोना पीटना ११९
 रोम २२
 रोमों रोलों ६७
 लोकमत और जनताके नैतिक इबादत
 असर ३
 लोकयुग ४
 लोकसत्ता ४
 लाड़ जाति ९१-२
 वकीलका पेशा २१, ७६
 वरतेज परिषद — (देखिये राजपूत परिषद)
 वर्ण — अन्तरप्रान्तीय सम्बन्ध १०६, -का
 अर्थ १७, १९-२०, २३ ३३, ४०-१,
 ४६-९, ५७, ६३-४
 -की खोज १९, ४२, ५६
 -कितने हैं ? ३, १४, २०, २६, ४१
 ४६, ५०, ६३, ९१, ९३
 -अभिमानके बनाये नहीं हैं १२, २६,
 ५४-५
 -अभिमानका स्वभाव ३२-४
 -और गुजरेका धन्दा ४८
 -और जातपात-(देखिये जातपात)
 -और जातिके बाड़े २५
 -और रोटीबेटी व्यवहार-(देखिये रोटी-
 बेटी व्यवहार)
 -और सेवाधर्म २४-५, ३८-९
 -में औचनीचका भाव - (देखिये औच
 नीचका भेद)
 -में जन्म २५, ५४

- और हिन्दू धर्मको आचार स्मृतियाँ ४०
- और वर्गवर्गके संगड़े ६३
- का जुलम और संयम ४१
- बदलता नहीं २४
- या अपवर्ण ४२
- श्रीमद्भगवद्गीता २५
- वर्णधर्म-और कृष्णार्जुन ४३, ४९
- और रीतबंदी व्यवहार-(देखिये रीत बंदी व्यवहार)
- और भूतोप २५, ५४, ६३-४
- और विरासतके गुण २४
- का आदर २५
- की आज्ञाकी स्थिति १३-४, १७-८, २२, ४७-९, ५६, ५८, ७१, ७६, ९३
- की बिगड़ो हुआ शकलका परिणाम २०, ३८, ४७, ४९
- को शुद्धि २८
- मिट गया ४७, ६९
- यानी संवाधर्म ५८
- राजदण्ड ६४
- व्यापार ७६
- सारी दुनियाको मानना होगा १६, ३८, ५०, ५४
- वर्णधर्म यानी ? १४-६, १९, ३८-९, ४१, ४६, ४८-५१, ५७-८, ६२-३
- वर्णधर्मको प्रथा — समाजकी भलाभीके लिखे १४, ९२-३
- हिन्दू धर्मकी जड़ १५
- की खोज १९-२०
- आध्यात्मिक विकास १९-२०, २३, ४०-१, ५५-६
- और स्वराज २७
- और सर्वोदय २३
- और आजादी ५५
- और आजीविका-(देखिये आजीविका)

- वर्णव्यवस्था ३-५, ५१, ६३-४, ८२, ९८
- समाजमें २०-१, ४२-३, ५१-२
- आजकी-(देखिये वर्णधर्म)
- का सुधार-(देखिये सुधार)
- का अर्थ ३३
- और अद्वैतपन ५२, ५६
- और युरोपकी वर्ग व्यवस्था ४, ४७
- को नाबूद करनेका विरोध ४
- में भेदभाव ४
- वर्णभ्रंश ७, ११, ५६
- वर्णाश्रम धर्म ७, ३३-५, ९४, १०५
- का अर्थ ९, ३८
- के कर्तव्य ५७
- वल्लभभाभी पटेल-सरदार ८६
- 'वाल्मि' ७९-८०, (हज्जाम) १०६
- विदेशी हुकूमत ४७
- विद्यापीठ और शौचाचार १२०-२१
- विद्यार्थियोंकी शक्ति ११०-१२
- विधवा ११२
- विनोबा ८-९
- विराम्यतके नियम-(देखिये पीढ़ी दर पीढ़ीका सुसल)
- विश्वामित्र २७
- वृन्दावन १२७
- वेद ३६, ७७
- वैश्य कौन ? १४, २०-२१, ७३-४
- वैश्य धर्म ७, ८, ४९, ७५-६
- वैश्य वर्ग ३७, ४३, ४९, ७५-६, १०६
- वैश्य समाज ११
- वैष्णव ५, १२७-८
- वैष्णव धर्म १२८
- वैष्णव सम्प्रदाय १२७-८
- व्रजभूमि १२७
- शरीरश्रम १०, ५८
- शंकराचार्य ८७

शंखूक ३४, ३७-८
 -अतिहासिक ३८
 शादी-ब्याह ५, २५, ३५, ४१, ४६,
 -अंतरप्रांतीय २९, १०६
 -अंतरजातीय ५, ४४-६, ९५, ९८,
 १०६, ११९
 -जातिमें १०१, १०६
 शास्त्रार्थको पद्धति ६, ३७-८, ४०-२, ७७-८,
 ११३-४
 शिवाजी ३५
 शूद्र ४९, ५७-८, ७५-६
 शूद्रधर्म ४९, ५७-८
 शूद्रवर्ण १४, २१, ३४, ३६, ४९, ५०-१
 शौचाचार १२२
 श्राद्ध (सच्चा) १११
 श्रीमद्भगवद्गीता २६
 श्रोतृवर्ण १२७
 सत्याग्रह ९५, ९९-१०२, १०६-१२
 सत्याग्रहाश्रम (देखिये आश्रम)
 सदाव्रत १२६
 सनातनी ११३-४
 समाज सुधार ४३
 'सर्वोदय' (अण्डु धिस लास्ट) ८१
 संस्कृत ज्ञान ७७
 संस्कृति — ग्रीसकी ३१
 -पाश्चात्य १८, ३१, ७२, ७६
 -मशीनकी ७६
 -हिन्दू १७, २३, ३१
 साधुका अर्थ ८४
 साधुओंका वर्ग ८५
 साधुओंका जुलूम ८६
 साधु, जैन ११०
 साबरमती आश्रम (देखिये आश्रम)
 सिसैरी २२
 सीता १७
 सीरिया ३१

सुधारक ९४-५, ९९-१०७, ११५-२०,
 १२९
 -का चरित्र ९५, १००-३, १०७-८,
 १२७
 सुरी १३२
 सेवाधर्म १८, २४, ३९, ५०-१, ५८, १०७-९
 सेवाका अर्थ ४९, ५२, ५८, ८०, १०७
 स्त्री २५, ७१, ७६, ८७
 स्मशान सुधार १३०
 स्मृतियाँ ४०, ९३
 स्वराज २७, ७५-६, ८०, ९७, १११, १२०
 हवः १२२
 हरिजन (देखिये अछूत)
 -सेवा १०६-७
 -सेवक ६५, १०७
 -सेवक मण ५२, ६५
 -मन्दिर प्रवेश बिल ६५
 हिन्दुस्तानकी गुलामी-और ब्राह्मण ३७
 हिन्दू त्यौहार, मुसलमान त्यौहार ४४-५
 हिन्दू धर्म ८, २७-८, ९२-३, ९५, १०६
 -की गन्दगी १३, ३९, ६६, ९२-३,
 १०५, ११९, १२६
 -का कलंक ६, १३-४, १६, ६७
 -का अर्थ २८, ५०-२
 -और धर्म परिवर्तन, (धर्म परिवर्तनका
 पागलपन)
 का विकासक्रम (बढ़ती) ३८, ४२, ४९
 -५०, ५५, १०६, ११३-४
 -और पुनर्जन्म ५, ३२
 -का कर्ज- ३, ३०-१, ५०, ६५-६
 -की अवनति ५६, ६६, ७२, ९२, १०६
 -और यज्ञ और त्याग ४०
 -और बौद्ध धर्म ३०
 हिन्दू संस्कृति-(देखिये संस्कृति)
 -और वैश्य ३६
 हेमू ३५
 हैदराबाद ८६

